UNIVERSAL LIBRARY

OU_182270

UNIVERSAL LIBRARY

हिन्दी-मेघदूत

समवृत्त और समश्लोकी हिन्दी-अनुवाद-सहित

लक्ष्मीधर वाजपेयी

हिन्दी-मेघदूत

अर्थात

कवि-कुल-कमल-दिवाकर श्रीकालिदास का

संस्कृत मेघदूत

और उसका

खड़ी बोली की कविता में समश्लोकी और समवृत्त

हिन्दी-अनुवाद ।

अनुवादक

कालिदासानुचर लक्ष्मीधर वाजपेयी

—.०:—

प्रकाशक

इंडियन प्रेस, लिमिटेड, प्रयाग

१९२३

चतुर्थ संस्करण] सर्वाधिकार रक्षित । [मूल्य ॥)

Published by
Kali Kinker Mittra,
at The Indian Press, Ltd.,
Allahabad.

Printed by
Bishweshwar Prasad,
at The Indian Press, Ltd.,
Benares-Branch

प्रस्तावना ।

—:०:—

महाकवि कालिदास

के विषय में, यहां पर, कुछ लिखना हमारा कर्त्तव्य है; पर हमारी अल्पवाचा-शक्ति में सामर्थ्य नहीं है कि हम उनके विषय में कुछ कह सकें। आज तक अनेक देशी और विदेशी विद्वान् तत्ववेत्ताओं ने, मुक्तकण्ठ से उनकी कलित-कीर्त्ति का गान किया है। जगत् की प्रायः समस्त सभ्य भाषाओं में उनके ग्रन्थों का पूर्ण श है। उनके इस

महाकाव्य मेघदूत

के विषय में तो किसी किसी विद्वान् का मत है कि यदि कालिदास केवल इसी काव्य के कर्त्ता होते तो भी विद्वज्जन-समाज में उनका उतना ही आदर होता जितना आज हो रहा है। 'मेघदूत' में सम्पूर्ण काव्यगुण पाये जाते हैं। इस काव्य की सर्वप्रियता का अनुमान इसी बात से किया जा सकता है कि सारी देशी-विदेशी सभ्य भाषाओं में इस ग्रन्थ के अनुवाद हो चुके हैं। इतना ही क्यों, एक एक भाषा में, इस काव्य के, एक एक नहीं, अनेक अनेक अनुवाद हुए हैं। आज सारे संसार में अंगरेज़ी भाषा सर्वश्रेष्ठ मानी जाती है। उसमें भी प्रस्तुत काव्य के दो अनुवाद हो चुके हैं। एक विल्सन साहब ने किया है और दूसरा ग्रिफिथ साहब ने। मराठी में भी इस काव्य के तीन अनुवाद हुए हैं। प्रस्तुत अनुवाद के पहले इस काव्य के

हिन्दी में चार अनुवाद

हो चुके हैं; पर इससे किसी को आश्चर्य्य न करना चाहिए; क्योंकि हिन्दी हिन्दुओं की और सारे हिन्द की राष्ट्रभाषा है। सबसे पहला अनुवाद स्वर्गीय राजा लक्ष्मणसिंह ने, दूसरा स्वर्गीय ठाकुर जगमोहनसिंह ने, तीसरा लाला सीताराम, बी० ए०, ने और चौथा राय देवीप्रसाद, बी० ए०, बी० एल०, ने किया है।

पहले दो सज्जन क्षत्रिय हैं और पिछले दोनों सज्जन कायस्थ हैं ! इनमें से तीन सज्जनों के अनुवाद विविध छन्दों से विभूषित और अत्यन्त सरस हैं । लाला सीतारामजी ने भी, अपनी काव्यशक्ति के अनुसार, अनुवाद को रोचक बनाने में त्रुटि नहीं की है । अब प्रश्न यह है कि हिन्दी में चार अनुवादों के रहते हुए भी इस

पाँचवें अनुवाद का यत्न

क्यों किया गया ? इसका मुख्य कारण यह है कि महाकवि कालिदास की कविता का आनन्द, अपनी अल्प बुद्धि के अनुसार, हम भी प्राप्त करें । इसके अतिरिक्त अब तक के चारों अनुवाद ऐसी भाषा और ऐसे छन्दों में हुए हैं जिनका स्वाद हिन्दी के पाठक बहुत दिनों से ले रहे हैं । एक ही प्रकार का पदार्थ, अधिक काल तक, सेवन करने से मनुष्य का मन उकता जाता है । वर्तमान काल भारत का युगान्तर है । लोगों में नूतन विचारों की जागृति हो रही है । एक-राष्ट्रीयता स्थापित करने के लिए एक राष्ट्रभाषा, एक राष्ट्रलिपि, एक राष्ट्रधर्म और एकराष्ट्र उद्देश्य निश्चित करने का प्रयत्न हो रहा है । सौभाग्य से महाराष्ट्र, बङ्गाल आदि प्रान्तों के मुख्य नेताओं ने हिन्दी ही को राष्ट्रभाषा का आदर दिया है । गत २५ अक्टूबर, ०९ को बड़ौदे में जो "महाराष्ट्र-साहित्य-सम्मेलन" हुआ, उसमें भारत के मुख्य माननीय विद्वान्, बङ्गाली और अँगरेज़ी के प्रसिद्ध ग्रन्थकार तथा वक्ता श्रीयुत रमेशचन्द्रदत्त ने, अपने जीवन की अन्तिम वक्तृता में, स्पष्ट कह दिया है कि "हमें देश भर में एक ही लिपि और एक ही भाषा का प्रचार करना चाहिए । इस काम के योग्य सिर्फ़ नागरी लिपि और हिन्दी भाषा ही कही जा सकती है ।" इसलिए अब

खड़ी बोली की कविता

में काव्य-ग्रन्थों की रचना होना चाहिए । यही बोली भारतवासियों की राष्ट्रभाषा है । अभी तक जिस भाषा में हिन्दी की कविता होती थी वह राष्ट्र भर की भाषा नहीं है । वह एक छोटे से प्रान्त की भाषा है । इसके अतिरिक्त वर्तमान समय में पण्डित श्रीधर पाठक, (जो खड़ी बोली के भी आचार्य्य हैं) तथा और दो एक कवियों, को छोड़ कर कोई शुद्ध व्रजभाषा लिखते भी नहीं हैं । आज कल के व्रज-भाषावाले (सिर्फ़ कहने भर के लिए) कवि खिचड़ी भाषा या वर्णसंकर भाषा में

कविता करते हैं, जिसकी क्रिया यदि बैसवाड़ी की है तो संज्ञा बुन्देलखण्डी की है; और, यदि, सर्वनाम खड़ी बोली का है तो विशेषण व्रजभाषा का है। ऐसी भाषा के काव्य-ग्रन्थों को राष्ट्रभाषा के काव्यग्रन्थ कहना शोभा नहीं देता और न ऐसी भाषा लिखने से कभी भाषा को स्थिरता आ सकती है। इसलिए वर्त्तमान काल में खड़ी बोली में ही काव्यग्रन्थ लिखने की बड़ी आवश्यकता है। आनन्द की बात है कि पण्डित श्रीधर पाठक, पण्डित महावीरप्रसाद द्विवेदी, पण्डित गिरिधर शर्म्मा, पण्डित नाथूराम शङ्कर शर्म्मा, बाबू मैथिलीशरण गुप्त और पण्डित कामताप्रसाद गुरु आदि सरस्वती-सुत कवि खड़ी बोली की कविता-श्री को बढ़ा रहे हैं। हमारी सम्मति है कि जब उपर्युक्त सज्जन खड़ी बोली में महाकाव्य-ग्रन्थ लिखेंगे और संस्कृत तथा अंगरेज़ी आदि अन्य भाषाओं के महाकाव्यों का खड़ी बोली में अनुवाद करेंगे तभी उसकी उन्नति होगी। बङ्गाली, मराठी और गुजराती में अनेक कवियों ने महाकाव्य-ग्रन्थ लिखे हैं; और इसी लिए इन भाषाओं का काव्य-भाण्डार बढ़ा हुआ है। एक बात और है। जब तक खड़ी बोली की कविता में

संस्कृत के ललित वृत्तों की योजना

न होगी तब तक भारत के अन्य प्रान्तों के विद्वान् उससे सच्चा आनन्द कैसे उठा सकते हैं? यदि राष्ट्रभाषा हिन्दी के काव्य-ग्रन्थों का स्वाद अन्य प्रान्तवालों को भी चखाना है तो उन्हें संस्कृत के मन्दाक्रान्ता, शिखरिणी, मालिनी, पृथ्वी, वसन्ततिलका, शार्दूलविक्रीड़ित आदि आदि ललित-वृत्तों से अलङ्कृत करना चाहिए। भारत के भिन्न भिन्न प्रान्तों के निवासी विद्वान् संस्कृत भाषा के वृत्तों से अधिक परिचित हैं। इसका कारण यही है कि संस्कृत भारत भर की पूज्य और प्राचीन भाषा है। भाषा का गौरव बढ़ाने के लिए काव्य में अनेक प्रकार के ललित वृत्तों और नूतन छन्दों का भी समावेश होना चाहिए। आनन्द की बात है कि 'सरस्वती' मासिक पत्रिका का कवि-वर्ग इस ओर ध्यान रखता है। वर्तमान समय में संस्कृत के मनोहर वृत्तों की योजना की जितनी आवश्यकता है उससे भी अधिक आवश्यकता इस बात की है कि संस्कृत के महाकाव्यों का

समश्लोकी और समवृत्त अनुवाद

हो। परन्तु यह बात बहुत कठिन है। संस्कृत भाषा में यह एक विशेष गुण है

कि उसमें कही गई महद्भावपूर्ण बात कुछ अक्षरों से जताई जा सकती है। ऐसे ही अनेक गुणों के कारण संस्कृत भाषा का "संस्कृत" नाम पड़ा है। 'संस्कृत के एक पद्य का भाव हिन्दी में एक ही पद्य में—नहीं नहीं गिने हुए अक्षरों और गिनी हुई मात्राओं में—लाना अत्यन्त दुस्साध्य है और हमारे समान क्षुद्र कवि के लिए तो यह अत्यन्त साहस का काम है। अब, प्रश्न यह है कि जब संस्कृत में उपर्युक्त गुण है तब उसकी आत्मजा हिन्दी में यह गुण क्यों न होना चाहिए? हिन्दी में भी यह गुण है; पर वह गुण प्रकट तब हो सकता है जब संस्कृत के विद्वान् और हिन्दी के प्रतिभाशाली कवि, संस्कृत के महाकाव्यों का हिन्दी में समश्लोकी और समवृत्त अनुवाद करें। जहां तक हम जानते हैं, किसी ग्रन्थ का ऐसा अनुवाद, अब तक, खड़ी बोली की कविता में नहीं छपा है। ऐसे अनुवादों से भाषा की व्यापकता, गम्भीरता और सामर्थ्य का परिचय मिलता है। हिन्दी के इन गुणों के प्रकट करने की आज बड़ी आवश्यकता है। परन्तु मूल काव्य की सरसता और सरलता (प्रसादगुण) की रक्षा करके समश्लोकी और समवृत्त अनुवाद करना अत्यन्त कठिन काम है। हमारे लिए तो ऐसा अनुवाद करना असम्भव है; क्योंकि

हम प्रतिभाशाली कवि नहीं

हैं। हमें संस्कृत का अच्छा ज्ञान भी नहीं है और कविता करने का अभ्यास नया है। हम अपनी मातृभाषा के एक क्षुद्र और लघु सेवक हैं। सेवक का काम सेवा करना है। इसी विचार से हमने निश्चय कर लिया है कि अपने जीवन भर, किसी न किसी प्रकार, हम उसकी सेवा करते रहेंगे; फिर चाहे वह सेवा तुच्छ ही क्यों न हो। यह हमारी पहली काव्य-कृति है। हम यह भी जानते हैं कि इस अनुवाद में मूल काव्य की सहस्रांश भी सरसता और सरलता नहीं है। हम यह भी जानते हैं कि समालोचकों की दृष्टि में इन अनुवाद में और भी अनेक दोष हैं; और उनके लिए हमें क्षमा भी कैसे मिल सकती है; पर इस स्थान में हम इतना प्रकट कर देना उचित समझते हैं कि परीक्षक लोग, इस काव्य की परीक्षा करते समय, इस प्रकार के अनुवाद करने की कठिनता पर भी ध्यान रक्खें। यदि समालोचक विद्वान् इस अनुवाद की सत्य समालोचना करके इसके गुण-दोष दिखलावेंगे

तो हम पर—और आगे इस प्रकार के अनुवाद करने वाले प्रत्येक सज्जन पर—उनका बड़ा उपकार होगा । हम आशा करते हैं कि हमारे प्रिय मातृ-भाषा-बन्धु हमारी इस अल्प और हीन सेवा को स्वीकार करेंगे । यदि हिन्दी के प्रतिभाशाली कवि और संस्कृत के उत्कृष्ट ज्ञाता, हमारी उपर्युक्त विनती पर ध्यान देकर, अपनी मातृ-भाषा में काव्यग्रन्थों की वृद्धि करेंगे तो हम समझेंगे कि उन्होंने हमारी इस तुच्छ कृति को स्वीकार किया है । हिन्दी के प्रेमी पाठक यदि इसे पसन्द करेंगे तो हम, अपनी हृदयेश्वरी देवी के कृपाकटाक्ष से, अन्य संस्कृत-काव्यग्रन्थों, नीतिग्रन्थों और धर्म्म-ग्रन्थों के पद्यमय अनुवाद उनके सम्मुख उपस्थित करेंगे । अन्त में हम अपने परमहितैषी और उपकारी ज्येष्ठ बन्धु पण्डित माधवराव सप्रे को भक्तिपूर्वक धन्यवाद देते हैं, जिन्होंने इस अनुवाद को पूर्ण करने के लिए, हमें, वात्सल्य भाव से, उत्साहित किया ।

रायपुर,
मार्गशीर्ष, शुक्ला ७ । १९६६

लक्ष्मीधर वाजपेयी ।

प्रस्तुत काव्य की संक्षिप्त कथा।

पूर्व भाग।

१ से ५ श्लोक तक—'एक स्वत्वोन्मादी यक्ष' अपने प्रभु (कुबेर) से एक साल के लिए कान्ता से अलग रहने का शाप पा कर रामगिरि में रहने लगा। प्रिया से दूर होकर, उसने थोड़े दिवस, उस पर्वत पर व्यतीत किये। आषाढ़ के 'प्रथम दिन' में शिखर पर एक मेघ देख कर वह उसके सामने 'खड़ा हो रहा' और यह सोच कर कि आज 'मेघ द्वारा' अपनी स्त्री के लिए 'जीवनाधार वार्ता भेजूँ,' 'कुटज-कुसुम' का 'अर्घ्य' देकर वह मेघ-प्रति 'मुदित मन से बोला'। इस पर कवि कहता है कि 'उत्कण्ठा से' यक्ष ने 'मेघ से दीन वाणी कही,' पर यह न सोचा कि 'धूमाग्नि और पवन जल से' बना हुआ यह 'अज्ञान' (जड़) मेघ है, सन्देशा कैसे ले जायगा। परन्तु फिर कवि समाधान करता है कि इसमें यक्ष का क्या दोष? 'कामान्ध प्राणी' 'चेताचेत-क्रम नहीं' जान सकते'।

शाप पाकर यक्ष का रामगिरि में रहना और एक मेघ को देख कर उसके द्वारा सन्देशा भेजने के लिए उत्सुक होना।

६ से १५ श्लोक तक—यक्ष मेघ से कहता है कि तू पुष्कारावर्तक के 'विदित कुल में जन्मा है,' और 'इच्छानुसार विचार सकता है'। 'इन्द्र का तू प्रधान' है। इसलिए 'हे समर्थ'! मैं तुझ से प्रार्थना करता हूँ। 'सुजन से' विफल 'भिक्षा' भी श्रेष्ठ है और 'नीच से लाभ व्यर्थ' है। 'मैं दुखी हूँ' और तू 'ताप-हारी' है इस लिए मेरा सँदेशा लेकर तू 'अलकापुरी' जा और मेरी प्रिया को

मेघ से उसकी बड़ाई करके, अलका नगरी को सन्देशा ले जाने के लिए प्रार्थना करना और मार्ग के कौतूहलों का वर्णन करके उत्साह दिलाना।

सुना । इतना कह कर, और दो पंक्तियों में अलका का वर्णन करके यक्ष उसे उत्साह दिला कर कहता है कि मार्ग में तुझे पथिकों की स्त्रियाँ 'गगनतल में' देखेंगी । इस समय तुझे 'धीरे धीरे पवन' आगे चला रहा है, 'बाईं ओर' पपीहा बोल रहा है । मार्ग में तुझे 'सुन्दरी बलाका, गर्भाधानोत्सव में पूजेंगी' । तू अपनी 'भाभी सती को' (मेरी स्त्री को) अवश्य देखेगा । 'हंसश्रेणी,' तेरे साथ 'कैलाश' तक 'जावेगी' । अब तू इस अपने प्रिय अचल से जाने के लिए 'आज्ञा ले' । यक्ष कहता है कि—'मैं श्रवण-सुख के योग्य संदेशा पीछे कहूँगा,' पहले तू अपने जाने योग्य 'मार्ग सुन ले' । उस मार्ग में 'श्रान्तिहारी शिखर' हैं और 'पुष्टिकारी स्रोतों का मृदु जल' है । 'सिद्धाङ्गनायें' तुझ को चकित' होकर 'देखेंगी' । अब तू इस 'सरस निचुलस्थान' (हरे बेतों के स्थल) से उत्तर ओर चढ़ता हुआ जा । इन्द्र के चाप से तेरा शरीर शोभित होगा ।

१६ से २८ श्लोक तक—ग्राम की स्त्रियाँ तुझे 'कृषि-फलद' मान कर कृतज्ञ होकर देखेंगी । आगे

क्रमशः मालक्षेत्र, आम्रकूट, विन्ध्य-भूमि-विशीर्णा रेवा, दशार्णजनपद, विदिशा राजधानी, वेत्रवती और नीचगिरि होते हुए निर्विन्ध्या तक का मार्ग ।

कुछ पश्चिम ओर 'मालक्षेत्र' से जाकर उत्तर ओर जाना । वहाँ थकने पर 'तुझे आम्रकूट शिर पर धारण करेगा' । देवस्त्रियों सहित आकाश-मार्ग से तेरी 'छवि देखेंगे' । आगे, 'कुञ्ज में शान्ति' लेते हुए जाना । वहाँ 'विन्ध्य-भू में विशीर्णा' रेवा नदी मिलेगी उसका पानी 'पीते जाना' । आगे, वर्षा का आनन्द पाकर, सारङ्ग तेरा मार्ग सूचित करेंगे । इसके बाद यक्ष यह कह कर मेघ को उत्सुक करता है कि तू मेरे लिए 'जाने में' अवश्य शीघ्रता ही करेगा; पर मुझे सन्देह है कि 'ककुभ-सुरभि पर्वतों में' रम कर और मयूरों का 'ध्वनियुत मान' पाकर तू आगे 'द्रुतगमन' कैसे कर सकेगा । आगे चल कर तुझे वर्षा की शोभा

से पूर्ण दशार्ण नामक प्रान्त में 'उसकी प्रथित विदिशा राजधानी मिलेगी'। वहाँ 'वेत्रवन्ती' का 'सुनीर' पी कर तू अपनी 'कामेच्छा भी सफल' करना। वहाँ 'नीच नामा विशालगिरि' पर विश्रान्ति लेना। आगे 'कुछ ठहर के, वनसरिता के तीर, मालती सींचे जाना'। इसके बाद यक्ष कहता है कि वहाँ जाकर यदि तू 'उदीची का मार्ग) छोड़ देगा' तो तेरा 'पथ कुटिल हो जायगा' पर 'उज्जयिनी के महल लखना ठीक भी है'। वहाँ जाते हुए मार्ग में 'निर्विन्ध्या (नदी) से सम्भ्रम रत' हो लेना और उसकी कृशता दूर करना।

३० से ३८ श्लोक तक—इसके बाद फिर तू 'अवन्ती उज्जयिनी और महा (प्रान्त) पहुँच' कर 'जल्द उज्जयिनी कालेश्वर का वर्णन। जाना'। वह मानो एक 'स्वर्ग का भाग' है। वहाँ शिप्रा नदी की वायु प्रातःकाल में 'कुंजों से परिमलित' होकर 'स्त्रीजनों की रति-जनित ग्लानि' मिटाती है। नगर में पहुँच कर तू 'जालों से' (झरोखों से) सुगन्धित 'धूप पीना' और श्रान्ति खोना। आगे वही 'त्रिभुवनपति शम्भु (महाकालेश्वर) के धाम में जाना,' जहाँ 'गन्धवन्ती' नदी की वायु बह रही है। वहाँ 'सायङ्काल में,' शिवजी की पूजा होते समय, 'दुन्दुभि सी बजा के' अपनी 'गम्भीर ध्वनि सफल करना'। वेश्यायें, जो मन्दिर में नृत्य कर रही हैं, तेरी बूँदों से आनन्दित होंगी। 'सन्ध्या-लाली' पाकर तू अपने को 'वृत्ताकार छाना' और शिवजी के 'गीले गजचर्म की' इच्छा पूर्ण करना। अँधेरी रात में कृष्णाभिसारिकायें अपने प्यारों के घर 'जाती होंगी'। उन्हें 'विद्युत्प्रभा दिखला कर' तू भी किसी छत पर, अपनी थकी हुई प्यारी बिजली के साथ विश्राम लेना। और फिर 'सूर्य्य देख कर बाकी मार्ग क्रमण करना'। 'सूर्य्य का मार्ग' रोकना; क्योंकि वह 'नलिनी' की अश्रुरूप ओस पोंछेगा।

४० से ५१ श्लोक तक—आगे गम्भीरा नदी में जब 'तेरी सुभगछाया' 'प्रवेश करेगी' तब उसकी अनेक लीलायें देख कर और 'सरस' होकर तू आगे कैसे चलेगा ? आगे सुरगिरि, या देवगिरि जाते हुए तेरे ऊपर 'वायु पंखा झलेगी'। देवगिरि पहुँच कर स्वामिकार्तिक पर 'स्वर्गङ्गा के सुमन' बरसा कर, उनके मोर को 'गम्भीर ध्वनि' से 'नचाना'। 'स्वामिपूजा करके' आगे 'गोमेधजा (चम्बल) उतरना' जो रन्तिदेव की 'कीर्तिधारा' है। उसमें 'जब तू पानी लेगा' तब 'व्योमगामी' सिद्ध आदि देव तेरी 'छवि देखेंगे'। आगे 'दशपुरवधू' तुझे 'प्रेमपूर्ण' दृष्टि से देखेंगी। 'तू प्रथम छायारूप, ब्रह्मावर्त,' जाना और फिर 'कुरुक्षेत्र को' जाना। वहाँ 'सरस्वती' नदी का जल पीना जिसे कौरव-पाण्डव युद्ध के समय 'सुरस हाला' त्याग कर हलधर ने सेवन किया था। आगे चल कर तू 'कनखल-प्रान्तवाही गंगा देखेगा'। उसके 'विमल जल' में 'तेरी चलित छाया' 'यों लसेगी' जैसे बिना प्रयाग के गंगा-यमुना का संगम हो गया हो।

क्रमशः गम्भीरा, देवगिरि गोमेधजा (चम्बल), दशपुर, ब्रह्मावर्त, कुरुक्षेत्र और सरस्वती होते हुए, कनखल में गङ्गा तक का मार्ग।

५२ से ६३ श्लोक तक—आगे चल कर 'गंगा-जनक हिमवान' मिलेगा। उसके शिखर पर तेरी अपूर्व शोभा होगी। वहाँ यदि 'दावाग्नि से चमरीकच जलें' और 'शैल दुखी' हो तो तू पानी बरसा कर अग्नि शान्त करना। 'तेरी वाणी न सह' कर तेरे 'उल्लङ्घनार्थ' वहाँ शरभ (अष्टपद मृग) कूद कूद कर अपने पैर तोड़ेंगे। वहीं 'शम्भु-पदाङ्कित शिला' की प्रदक्षिणा करना जिसे 'सिद्ध नित्य' पूजते हैं। वायु-पूर्ण बाँसों की मधुर ध्वनि के साथ वहाँ किन्नरियाँ शिवगीत गाती हैं; तू भी अपनी ध्वनि करके मृदङ्ग सी बजा देना।

हिमालय पहुँच कर, क्रौंचरन्ध्र पार करके, कैलास में मानसरोवर का नीर पान करते हुए, अलका तक का मार्ग।

आगे 'हिमगिरितटों में' 'परशुधर की कीर्ति' का 'क्रौंचरन्ध्र' पार करके 'कैलाश का अतिथि बनना'। उसके श्वेत शिखर पर तेरा नीलवर्ण इस प्रकार शोभित होगा जैसे 'हलधर-स्कन्ध में नीला पट'। वहाँ 'क्रीड़ागिरि पर' यदि गौरीजी 'पाद द्वारा' विचर रही हों 'तो तू स्वजल स्तब्ध करके निसैनी बाँध देना,' जिससे चढ़ते समय उनके मृदु चरणों को सुख मिले। देवस्त्री यदि वहाँ तुझे 'गर्मी में' न छोड़ें तो 'भीम सी गर्जना से चौंकाना'। मानसरोवर पहुँच कर उसका 'नीर पीना' और 'नाना क्रीड़ा' करना। वहीं ऊँचे महलों वाली 'अलका नगरी शैल पर है'।

उत्तर भाग।

१ से ११ श्लोक तक—इस भाग में यक्ष पहले अलका के महलों में मेघ की समता दर्शाता है। वह कहता है कि जिस प्रकार 'तेरे साथी' इन्द्र धनुष, बिजली, गर्जना और ऊँचाई है उसी प्रकार वहाँ भी 'चित्र, नारी' मुरज और ऊँचाई है। तू 'नीरधारी' है: वहाँ भी 'मणिमयी भूमि' है। अलका की स्त्रियाँ सदा छओं ऋतुओं के पुष्पों से अपना शृङ्गार किये रहती हैं। सारांश, वहाँ सदा सब ऋतुओं के साज रहते हैं। वहाँ के महलों में 'रसीली' 'रतिफल' नामक मदिरा, मृदङ्ग और 'छबीली नारी' यक्षों के साथ रहती हैं। यक्षों की दिव्य कन्यायें वहाँ 'सुरतरु-तले' 'सुरसरि-मरुत्' का सेवन करती हुई 'गुप्तहीर' खेल खेलती हैं। रात में 'प्रेमी' लोग प्यारी मुग्धाओं के साथ 'काम-क्रीड़ा' करते हैं। वहाँ 'तेरे जैसे घन' (जार पुरुष) 'वायु (दूती) के संग' आते हैं, और अपना काम करके 'चातुरी' से भागते हैं। 'चन्द्रकान्त' मणि वहाँ अर्धरात्रि में नारियों की 'सुरत-जनित ग्लानि' को शान्त करते हैं। यक्ष बड़े श्रीमान् और कामी हैं। वे साथ में 'अमर-गणिका' लिये हुए, 'धनद-यश' गाते हुए किन्नरों के साथ, 'वैभ्राज' नामक 'उपवन' में विहार करने जाते हैं। अलका में रात में आने जाने

अलका-वर्णन।

वाली 'कामिनी' स्त्रियों के मार्ग, उनके 'कर्णफूल' के कमलपत्र और 'मुक्ताजाल' के मोती बिखर जाने के कारण, 'प्रातः समय' जान पड़ते हैं। 'रुद्र' के भय से 'मदन' यद्यपि वहाँ अपनी 'अलिज्या' (भौंरों की प्रत्यञ्चा) नहीं तानता तो भी वहाँ की कुटिल भ्रुकुटियों वाली स्त्रियाँ अपने 'नेत्रबाण' से काम का काम पूरा करती हैं। वहाँ केवल 'कल्पवृक्ष' ही 'सकल अबला-साज जन्माता है'।

गृह का वर्णन करके उसका पता और यक्षिणी के देखने की युक्ति बतलाना।

१२ से १८ श्लोक तक—यक्ष अपने घर का पता बतला कर मेघ से कहता है कि 'मेरा वासस्थल' कुबेर के महल के उत्तर ओर है। मेरे महल के बाड़े में फुलवाड़ी है। उसमें 'मेरी कान्ता' पुत्र की तरह एक 'बाल मन्दारवृक्ष पाले है'। बीच में एक सुन्दर वापी है। जिसमें 'कमलविकसे' हैं। 'वर्षा में भी' और मान-सरोवर निकट होने पर भी, उसी में 'हंस नीर पीते हैं'। 'वहीं' कनक-कदली से घिरा' मेरा क्रीड़ागिरि है। बीच में एक 'कुरबक घिरा माधवी-कुञ्ज' है, 'जिसके पास' बकुल और अशोक हैं। दोनों के बीच में 'हेम के दण्ड पै' एक स्फटिक की चौकी रक्खी है। 'सायंकाल' में 'मेरी कान्ता' 'उसी पै' मोर को नचाती है। हे मित्र मेघ! इन चिह्नों से तथा 'मेरे द्वारे शङ्ख और पद्म-चित्र लख कर' तू मेरा 'मदन पावेगा,' जो मेरे बिना 'उदास' दीखता है। वहाँ तू 'गज-शिशु' होकर 'त्वरित धाम में पैठना' और 'मेरे क्रीड़ा-नग पर' से अपनी 'तड़ित की दृष्टि अन्तर्गृहों में फैलाना'। वही सर्वाङ्गसुन्दरी, और 'धाता की युवतिरचना' में 'आदि' मेरी कान्ता है।

यक्षिणी की विरह दशा का वर्णन, उससे भेंट करने और सन्देशा कहने की युक्ति।

२० से ३५ श्लोक तक—तू देखेगा कि वह 'ऐसे भारी विरह-दिवसों' में 'क्षीण' और 'विरूपी' है। 'रोते रोते उसके नयन सूज गये हैं' और 'निःश्वासों से मृदु अधर भी भिन्नवर्णी हुए हैं'। तू उसे 'सारिका से बताती' या मेरा

'चित्र बनाती' हुई या पूजा में 'विकल' देखेगा। अथवा तू देखेगा कि वह रोती हुई मेरे कुल के पद 'गाने बैठी' है; किंवा 'बाक़ी विरह के दिन' लिखती है अथवा कल्पना में मुझ से मिलती है। 'प्रायः यही विरहिणी नारियों के विनोद हैं'। दिन में 'कामों से' 'विरह-व्यथा' उसे नहीं जान पड़ती; पर रात में 'तू देखेगा' कि वह 'क्षिति पर बिना नींद,' 'विरह की शय्या पर,' एक करवट से पड़ी है। जो रातें 'मेरे साथ' उसे 'क्षण सम' बीतती थीं वे आज 'तप्त आँसू' गिरा कर काट रही है। चन्द्रमा की 'सुधापूर्ण' किरणें अब उसे नहीं अच्छी लगतीं। 'शुद्ध स्नान' से उसकी 'अलकें' जड़ हो गई हैं। जब उसे किसी तरह कल नहीं पड़ती तब 'स्वप्न में मेरा संग' चाहती है; पर अश्रुओं के कारण नींद नहीं आती। 'तू देखेगा' कि वह 'नखयुत करों से' अपने 'विषम कच' सँभाल रही है। उस 'अबला ने सारे अलंकार त्यागे हैं' और सेज पर 'कष्ट से' अपना 'मृदु-तन' रख रही है। उसकी यह दशा देख कर तू भी 'अश्रुधार छोड़ेगा;' क्योंकि तू 'सरसहृदय' है। तू 'ऐसा मत माने' कि मैं उसका 'सुभग' होने के कारण यह सब व्यर्थ बड़ाई गाता हूँ। तू स्वयं 'यह सब देख लेगा'। तेरे वहाँ जाने से 'कामिनी का बायाँ चक्षु' और 'कदलीस्तम्भ सी गोरी वाम-जानु' स्फुरेगी। यदि तू उसे 'सुख-शयन में' देखे तो 'एक याम ध्वनि न करना;' कहीं स्वप्न में उसकी 'भुजलता' 'हमारी ग्रीवा' से छूट न जाय। पश्चात् तू उसे 'शीत वायु से जगाना'। वह ज्योंही 'खिड़की में तुझे बिज्जु के साथ देखे' त्योंही तू 'सुख से यों बोलना':—

३६ से ४८ श्लोक तक—हे 'सौभाग्यवाली' मैं तेरे 'भर्ता का प्रिय' मित्र 'जलद' हूँ और उसका 'सन्देशा ले कर 'तेरे निकट' आया हूँ। 'मेरी मन्द ध्वनि सुन' कर 'श्रान्त पथी' अपने घर, स्त्रियों की वेणी खोलने जाते हैं। इतना बतला कर यक्ष कहता है कि यक्षिणी, इतना सुन कर, तुझे

मेघ से यक्ष का सन्देशा सुनाना।

उसी तरह प्रेमपूर्वक देखेगी जैसे सीता ने अशोक वृक्ष पर पवनसुत को देखा था; और आगे सन्देशे की बातें वह बड़ी उत्कण्ठा के साथ सुनेगी: क्योंकि 'कान्ता, मित्र-द्वारा, कान्त की कुशल' पाकर उसके मिलाप से कुछ ही कम—या उतना ही—'मुदित' होती है। मेरे वचन मान कर, 'या जीवरक्षा-व्रतस्थ' के नाते से, तू वहाँ जा और यों कह, कि तेरा पति रामगिरि में है और तेरी कुशल पूछता है। विरह-दुख से जैसा तेरा हाल हो रहा है वैसा ही उसका भी है। और इस तरह वह तुझ से 'साम्य संकल्प-द्वारा' मिल रहा है: 'विधिवश उसका मार्ग रुका है'। वह जब तेरे पास था तब 'प्रकट बातें भी' 'तेरे कपोल चूमने के लालच से' वह तेरे कान में कहता था: पर इस समय वह 'नेत्रश्रुति-गति' से दूर है: इसलिए वह 'उत्कंठा से' रचित ये वचन मेरे मुख से कहला रहे:—'हे प्यारी! श्यामा लता में तेरा 'मृदुतन,' 'मृगी में' दृग, चन्द्र में तेरी 'मुखद्युति,' 'शिखी-पंख में' तेरा केश-पाश और 'सरिता-ऊर्मि में' तेरे 'भ्रूविलास' मिलते हैं: पर तेरी सारी शोभा एक जगह कहीं नहीं मिलती। मैं शिला में तेरा चित्र बना कर मिलना चाहता हूँ: पर आँसुओं से दृष्टि रुक जाती है। हा! वैरी धाता 'चित्र में भी' नहीं मिलने देता! स्वप्न में तेरे आलिङ्गन के लिए मैं कभी कभी अपनी भुजायें आकाश में फैलाता हूँ। मेरी यह दशा देख कर वन-देवता आँसू डालते हैं। 'हिमाचल' की वायु को मैं इसलिए अपने अंक में भरता हूँ कि कदाचित् वह तुझे भेंट कर आई हो। मेरा चित्त इसी चिन्ता में रहता है कि ये 'दीर्घ, दुःख-कारी' रातें दारुण समान कैसे हों और 'दिवस का संताप' कम कैसे हो। वियोग से मेरा चित्त इसी प्रकार की 'दुर्लभ' प्रार्थनायें कर कर के 'अशरण' हो गया है। मैं आशा से जी रहा हूँ: तू भी 'धैर्य-च्युत न होना'। 'मनुज की ऊँची नीची गति' सदा नहीं रहती। देवोत्थान एकादशी तक मेरा 'शापक्षय' होगा: 'ये शेष चार मास' तू आँखें मूँद कर व्यतीत कर दे। 'शरद ऋतु की चाँदनी' में 'विरह

में की हुई सब कामनायें पूरेंगी'। इतना कह कर यक्ष यक्षिणी के लिए यह एक पते की बात बतलाता है कि 'किसी दिन' रात को तू 'सोते सोते' रोती हुई 'चौंक कर जागी थी'। मेरे 'फिर फिर' पूछने पर तू हँस कर बोली "हे छली जी! मैंने 'स्वप्न में' तुम्हें एक 'सौति से रत देखा'।" इतना कह कर यक्ष कहता है कि इन पते की बात से तू 'सत्य जान' कि मैं कुशल से हूँ। 'लोकचर्चा' पर विश्वास न कर। तू ऐसा न समझना कि 'विरह में स्नेह भी हीन हो जाता है'। 'हीन' नहीं होता; किन्तु वह 'इच्छा-वस्तु' न मिलने पर और भी 'पीन' होता है।

५० से ५२ श्लोक तक—यह संदेशा बतला कर यक्ष मेघ से कहता है कि ये वचन कहकर तू उसे 'प्रथमविरह-क्लेश में धैर्य देना' और लौटते समय तू उसके 'कुशल वचन' के साथ और कोई 'चिह्न भी' लाकर मेरे 'ये सूखे प्राण बचाना'। यक्ष मेघ से पूछता है कि क्या तू ने यह बन्धु का कार्य्य स्वीकृत किया?' हाँ, तूने अवश्य स्वीकृत कर लिया है; तू अपने 'धैर्य' की रक्षा के लिए 'प्रत्युत्तर' नहीं देता; सच है क्या तू 'बिना बोले ही माँगते चातकों को' जल नहीं देता? अवश्य देता है; फिर मेरी प्रार्थना भला तू क्यों न बिना बोले ही स्वीकार करेगा। 'यद्यपि मेरी विनती योग्य न होगी;' तथापि 'मैत्री से' या मेरे ऊपर दया कर के या मुझे 'दुःखी वियोगी' जान कर मेरी 'वार्ता ले जा' और, फिर वर्षा की शोभा से सम्पन्न 'तू इष्ट देशों' में 'विचर'। क्षण भर भी 'तुझ से दामिनी वियोग न हो'।

———

पूर्व भाग ।

कश्चित्कान्ता विरहगुरुणा स्वाधिकारप्रमत्तः
शापेनास्तंगमितमहिमा वर्षभोग्येण भर्तुः ।
यक्षश्चक्रे जनकतनयास्नानपुण्योदकेषु
स्निग्धच्छायातरुषु वसतिं रामगिर्याश्रमेषु ॥ १ ॥

स्वत्वोन्मादी[1] बन, स्वप्रभु से शाप पा, एक यक्ष,
कान्ता से हो कठिन विरही ताप से एक वर्ष ।
बस्ती[2] की, हो विगत[3]-महिमा, रामगिर्याश्रमों[4] में,
सीता-स्नानोदक[5] शुचि जहाँ शान्त छाया द्रुमों में ॥ १ ॥

तस्मिन्नद्रौ कतिचिदबलाविप्रयुक्तः स कामी
नीत्वा मासान्कनकवलयभ्रंशरिक्तप्रकोष्ठः ।
आषाढस्य प्रथमदिवसे मेघमाश्लिष्टसानुं
वप्रक्रीडापरिणतगजप्रेक्षणीयं ददर्श ॥ २ ॥

काटे थोड़े दिवस गिरि में, दूर होके प्रिया से,
सोने का है सु-वलय[6] गिरा क्षीण भारी भुजा से ।
है आषाढ़ प्रथम दिन में मेघ देखा पवित्र,
मानो हाथी नगशिखर में खेलता है विचित्र ॥ २ ॥

तस्य स्थित्वा कथमपि पुरः कौतुकाधानहेतो-
रन्तर्वाष्पश्चिरमनुचरो राजराजस्य दध्यौ ।

---

१ अधिकार से मतवाला । २ बस्ती = निवास । ३ महिमा नष्ट कर । ४ रामगिरि के आश्रमों में । ५ सीता-स्नान का जल । ६ सुन्दर कड़ा ।

मेघालोके भवति सुखिनोऽप्यन्यथावृत्तिचेतः
कण्ठाश्लेषप्रणयिनि जने किं पुनर्दूरसंस्थे ॥ ३ ॥

उत्कंठा से घन लख, खड़ा हो रहा यक्ष शोकी,
उसके आगे बहु समय लों अश्रु की धार रोकी ।
मेघों को तो लख कर, नहीं धीर धारें सँयोगी,
दुःखी क्यों न प्रिय-मिलन की चाह में हों वियोगी ॥ ३ ॥

प्रत्यासन्ने नभसि दयिताजीवितालम्बनार्थी
जीमूतेन स्वकुशलमयीं हारयिष्यन्प्रवृत्तिम् ।
स प्रत्यग्रैः कुटजकुसुमैः कल्पितार्घाय तस्मै
प्रीतः प्रीतिप्रमुखवचनं स्वागतं व्याजहार ॥ ४ ॥

आया जाना निकट नभ[1] सो जीवनाधार दारा—
वार्ता[2] भेजूँ निज कुशल की आज ही मेघ-द्वारा—
यों सोचा, कुटज-सुम[3] ले, अर्घ दे, प्रेम भारी,
बोला वाणी, मुदित मन से, मेघ-सम्मान-कारी ॥ ४ ॥

धूमज्योतिःसलिलमरुतां संनिपातः क्व मेघः ?
सन्देशार्थाः क्व पटुकरणैः प्राणिभिः प्रापणीयाः ।
इत्यौत्सुक्यादपरिगणयन्गुह्यकस्तं ययाचे
कामार्ता हि प्रकृतिकृपणाश्चेतनाचेतनेषु ॥ ५ ॥

धूमाग्नी[4] औ पवन, जल से मेघ होता अयाना[5],
ले जाता है, पर कुशल की बात प्राणी सयाना ।
उत्कंठा में बिसर, कह दी मेघ से दीन वाणी,
चेताचेतान्तर[6] न समझें मूढ़ कामान्ध प्राणी * ॥ ५ ॥

१ वर्षा ऋतु या श्रावण मास (श्रीधर-कोश) । २ स्त्री के लिए जीवन का आधार वार्ता । ३ कुटज = एक पहाड़ी वृक्ष—सुम = फूल । ४ धुआँ, आग । ५ अज्ञान; अतएव जड़ । ६ चेत-अचेत का अन्तर । * अथवा—चेताचेतान्तर, सहज ही जान पाते न कामी ।

जानं वंशे भुवनविदिते पुष्करावर्त्तकानां
जानामि त्वां प्रकृतिपुरुषं कामरूपं मघोनः ।
तेनार्थित्वं त्वयि विधिवशाद् दूरबन्धुर्गतोऽहं
याञ्ञा मोघा वरमधिगुणे नाधमे लब्धकामा ॥ ६ ॥

तू जन्मा है विदित कुल में पुष्करावर्त[1] जान,
स्वेच्छारूपी[2] विचर सकता, इन्द्र का तू प्रधान ।
सो प्रार्थी मैं विरह-वश हूँ बन्धु के, हे समर्थ !
भिक्षा मोघा[3] वर[4] सुजन से, नीच से लाभ व्यर्थ ॥ ६ ॥

संतप्तानां त्वमसि शरणं तत्पयोदप्रियायाः
संदेशं मे हर धनपतिक्रोधविश्लेषितस्य ।
गन्तव्या ते वसतिरलका नाम यक्षेश्वराणां
बाह्योद्यानस्थितहरशिरश्चन्द्रिकाधौतहर्म्या ॥ ७ ॥

मैं दुःखी हूँ प्रभु-अनख[5] से, तू दुखी-तापहारी ;
सन्देशा दे, नगरि अलका में, प्रिया को हमारी ।
सो है बस्ती धनद[6], भवनों में प्रभा शुभ्र छाई—
जो है बाह्योपवन-शिव[7] के चन्द्र से चारु आई ॥ ७ ॥

त्वामारूढं पवनपदवीमुद्गृहीतालकान्ताः
प्रेक्षिष्यन्ते पथिकवनिताः प्रत्ययादश्वसन्त्यः ।
कः सन्नद्धे विरहविधुरां त्वय्युपेक्षेत जायां
न स्यादन्योऽप्यहमिव जनो यः पराधीनवृत्तिः ॥ ८ ॥

---

१ पुष्कर + आवर्त नामक मेघवंश । मूल में 'आवर्तक' है । 'क' को स्वार्थ प्रत्यय मान कर यहां 'आवर्त' ही रक्खा है । २ मनमाने रूप से । ३ विफल, न मिलनेवाली । ४ श्रेष्ठ । ५ कोप (श्रीधर-कोश) । ६ कुबेर-नगरी । ७ बाहर के बागवाले शिव ।

विश्वासी हो[1] पथिक-वनिता केश प्यारे उठा के,
देखेंगी वे गगन-तल में रूप तेरे सुबाँके ।
वर्षा में, जो मम सम नहीं है पराधीन, प्राणी--
डालेगा क्यों विरह-दुख में प्राणप्यारी स्वमानी[2] ॥ ८ ॥

मन्दं मन्दं नुदति पवनश्चानुकूलो यथा त्वां
वामश्चायं नदति मधुरं चातकस्ते सगन्धः ।
गर्भाधानक्षणपरिचयान्नूनमावद्धमालाः
सेविष्यन्ते नयनसुभगं खे भवन्तं बलाकाः ॥ ९ ॥

धीरे धीरे पवन तुझको सानुकूला[3] चलावे,
बाईं ओर प्रियरव, सुखी हो, पपीहा सुनावे ।
गर्भाधानोत्सव-समय में सुन्दरी जो बलाका[4],
पूजेंगी वे नयन-सुख रे[5] ! व्योम में, हैं चलाका[6] ॥ ९ ॥

तां चावश्यं दिवसगणनातत्परामेकपत्नी-
मव्यापन्नामविहतगतिर्द्रक्ष्यसि भ्रातृजायाम् ।
आशाबन्धः कुसुमसदृशं प्रायशो ह्यङ्गनानां
सद्यःपाति प्रणयिहृदयं विप्रयोगे रुणद्धि ॥ १० ॥

हे स्वच्छन्दी ! अवश्य अपनी चारु भाभी सती को--
देखेगा तू दिवस-गणना-तत्परा[7] जीवती को ।
सद्यःपाती[8] प्रियहृदय है पुष्प सा स्त्री-जनों का,
आशा ही ने विरह-दुख में है उसे भी सु[9]-रोका ॥ १० ॥

---

१ पति के आने का विश्वास कर । २ अपनी मानी हुई । ३ जैसी चाहिए । ४ बकपंक्ति (श्रीधर-कोश) । ५ नयनों का सुखस्वरूप । ६ चतुर । ७ दिन गिनने में लगी हुई । ८ शीघ्र भंग होनेवाला । ९ सुगमता से (श्रीधर-कोश) ।

कर्तुं यच्च प्रभवति महीमुच्छिलीन्ध्रामवंध्यां
तच्छ्रुत्वा ते श्रवणसुभगं गर्जितं मानसोत्काः ।
आकैलासाद्विसकिसलयच्छेदपाथेयवन्तः
संपत्स्यन्ते नभसि भवतो राजहंसाः सहायाः ॥ ११ ॥

छत्रोत्पत्ती[1] कर, फलवती जो मही को करे है—
ऐसी प्यारी सुन तव ध्वनी मानसोत्कंठ[2] जो है ।
हंसश्रेणी मृदु कमल के नाल पाथेय[3] ले रे !
जावेंगी वे गगन-पथ में साथ कैलास तेरे ॥ ११ ॥

आपृच्छस्व प्रियसखममुं तुङ्गमालिङ्गय शैलं
वन्द्यैः पुंसां रघुपतिपदैरङ्कितं मेखलासु ।
काले काले भवति भवतो यस्य संयोगमेत्य
स्नेहव्यक्तिश्चिरविरहजं मुञ्चतो वाष्पमुष्णम् ॥ १२ ॥

आज्ञा ले तू स्वप्रिय गिरि से, अङ्क में भेट दे रे !
कक्षा[4] में जो रघुपति-पदों के पुनीताङ्क धारे ।
वर्षा में जो तव मिलन से स्नेह भी है दिखाता,
है तेरे ही चिर विरह से तप्त अश्रू[5] बहाता ॥ १२ ॥

मार्गं तावच्छृणु कथयतस्त्वत्प्रयाणानुरूपं
संदेशं मे तदनु जलद श्रोष्यसि श्रोत्रपेयम् ।
खिन्नः खिन्नः शिखरिषु पदं न्यस्य गन्तासि यत्र
क्षीणः क्षीणः परिलघु पयः स्रोतसां चोपभुज्य ॥ १३ ॥

सन्देशा मैं घन ! श्रवण के योग्य पीछे कहूँगा ,
सो तू मार्ग प्रथम सुन ले जो तुझे गम्य होगा ।

---

१ छत्रक या धरती के फूल की उत्पत्ति । २ मानसरोवर जाने के लिये उत्सुक । ३ मार्ग-भोजन । ४ कांची, तट । ५ मेह बरसने पर पर्वतों से जो भाफ निकलती है वही अश्रु हैं ।

हारे थाके पर शिखर हैं मार्ग में श्रान्तिहारी ,
स्रोतों का है मृदु जल जहाँ भूक में पुष्टिकारी ॥ १३ ॥

अद्रेः शृङ्गं हरति पवनः किंस्विदित्युन्मुखीभि-
र्दृष्टोत्साहश्चकितचकितं मुग्धसिद्धाङ्गनाभिः ।
स्थानादस्मात्सरसनिचुलादुत्पतोदङ्मुखः खं
दिङ्नागानां पथि परिहरन्स्थूलहस्तावलेपान् ॥१४॥

उन्नेत्रों[1] से चकित तुझको मुग्ध सिद्धाङ्गनायें,
देखेंगी ज्यों पवन हर ले जा रही हो शिलायें ।
आगे जा रे ! सरस निचुल-स्थान[2] से तू उदङ्मुख[3] ,
दिङ्नागों का कर-जनित[4] है गर्व सो मेट जाँच ॥ १४ ॥

रत्नच्छायाव्यतिकर इव प्रेक्ष्यमेतत्पुरस्ता-
द्वल्मीकाग्रात्प्रभवति धनुःखण्डमाखण्डलस्य ।
येन श्यामंवपुरतितरां कान्तिमापत्स्यते ते
बर्हेणेव स्फुरितरुचिना गोपवेषस्य विष्णोः ॥ १५ ॥

रत्नाभा[5] से मिलित सुठि ज्यों, इन्द्र का चाप आगे—
बाँबी से है वह निकलता, देखते चारु लागे ।
तेरा नीला सु-तनु उससे यों लसेगा सुवेशी[6];
जैसे पिच्छ-द्युति[7] सुभग से विष्णुजी गोपवेशी[8] ॥ १५ ॥

---

१ ऊपर नेत्र करके । २ सरस बेंत का स्थान । ३ उत्तर ओर । ४ दिग्गजों की शुंडों से उत्पन्न । इस श्लोक के पिछले दो चरणों का श्लिष्टार्थ यों है: कालिदास अपने प्रबन्ध से सम्बोधन करके कहते हैं कि "हे प्रबन्ध, रसिक निचुल कवि (उनका सहाध्यायी मित्र) के स्थान से आगे उत्तर की ओर दिङ्नागाचार्य्य (उनका प्रतिस्पर्धी) की हस्तचेष्टाओं का गर्व मिटाते हुए जा" । ५ रत्न-कान्ति । ६ सुन्दर शोभावाला । ७ मोरपंख का मुकुट । ८ कृष्णावतार में ग्वालों का रूप किये हुए: यहाँ पर कृष्ण' की जगह 'विष्णु' शब्द रख कर कालिदास ने विष्णु के अवतारों पर अपनी श्रद्धा दिखलाई है ।

त्वय्यायत्तं कृषिफलमिति भ्रूविलासानभिज्ञैः
प्रीतिस्निग्धैर्जनपदवधूलोचनैः पीयमानः ।
सद्यः सीरोत्कषणसुरभि क्षेत्रमारुह्य मालं
किञ्चित्पश्चाद् व्रज लघुगतिर्भूय एवोत्तरेण ॥ १६ ॥

भ्रूक्रीड़ा[1] से रहित नयनों, ग्राम-नारी, सप्रेम—
देखेंगी, तू कृषिफलद है, मान ऐसा सनेम ।*
जोता है जो सुरभित[2] नया क्षेत्र माल प्रतीची[3]—
जाके तू हे घन ! उधर से वेगि जाना उदीची[4] ॥ १६ ॥

त्वामासारप्रशमितवनोपप्लवं साधु मूर्ध्ना
वक्ष्यत्यध्वश्रमपरिगतं सानुमानाम्रकूटः ।
न क्षुद्रोऽपि प्रथमसुकृतापेक्षया संश्रयाय
प्राप्ते मित्रे भवति विमुखः किं पुनर्यस्तथोच्चैः ॥ १७ ॥

दावाग्नी से तपित गिरि को मेघ ! तू ही प्रशामें[5]
धारेगा सो शिर पर तुझे आम्रकूट व्यथा[6] में ।
नीच प्राणी तक शुभ करे मान पूर्वोपकार[7],
होंगे ऊँचे फिर विमुख क्यों मित्र पाके सुचारु ॥ १७ ॥

छन्नोपान्त-परिणतफलद्योतिभिः काननाम्रै-
स्त्वय्यारूढे शिखरमचलः स्निग्धवेणीसवर्णे ।
नूनं यास्यत्यमरमिथुनप्रेक्षणीयामवस्थां
मध्ये श्यामः स्तन इव भुवः शेषविस्तारपाण्डुः ॥ १८ ॥

---

१ भ्रूकुटि-विलास ।

*अथवा, "ग्राम-स्त्री, तू कृषि-फलद है—मान यों, हो कृतज्ञा,
देखेंगी वे सुरुचि तुझ को, भ्रूविलासानभिज्ञा" ॥

२ सुगन्धित । ३ पश्चिम ओर । ४ उत्तर ओर । ५ शान्ति देता है । ६ थकने पर । ७ पहले का उपकार ।

पाके वन्याम्र-फल-द्युति[1] से पाण्डु है शैल-चोटी,
बैठेगा तू उस पर मनो चीकनी चारु चोटी[2] ।
देखेंगे सो छवि, चकित हो, देव सस्त्री सुशील,
पृथ्वी-गौरस्तन गिरि मनो बीच में है सुनील † ॥ १८ ॥

अध्वक्लान्तं प्रतिमुखगत सानुमांश्चित्रकूट-
स्तुङ्गेन त्वां जलद शिरसा वक्ष्यति श्लाघमानः ।
आसारेण त्वमपि शमयेस्तस्य नैदाघमग्निं
सद्भावार्द्रः फलति न चिरेणोपकारो महत्सु ॥ (१) ॥

आगे, मार्ग-श्रमित[3] तुझको देख के, चित्रकूट,
प्यारे ऊँचे शिर पर तुझे धार लेगा सप्रीति ।
ग्रीष्माग्नी[4] तू शमन करना छोड़ के दीर्घ धार,
देते हैं सत्पुरुष, मृदु जो, शीघ्र प्रत्यूपकार[5] ॥ * (१) ॥

स्थित्वा तस्मिन्वनचरवधूभुक्तकुञ्जे मुहूर्तं
तोयोत्सर्गद्रुततरगतिस्तत्परं वर्त्म तीर्णः ।
रेवां द्रक्ष्यस्युपलविषमे विन्ध्यपादे विशीर्णां
भक्तिच्छेदैरिव विरचितां भूतिमङ्गे गजस्य ॥ १९ ॥

वन्य[6] स्त्री हैं जहँ बिहरती, कुञ्ज में शान्ति लेना,
पानी वर्षा कर सुलघु[7] हो चाल को वेग देना ।

---

१ पके हुए वन के आमों के फलों की चमक । २ 'वेणी' शब्द देखिए (श्रीधर-कोश) ।

† अथवा, "देखेंगे सो छवि, चकित हो, देव सस्त्री ललाम,
पृथ्वी-पीनस्तन यह मनो बीच का भाग श्याम" ।

३ मार्ग का थका हुआ । ४ गर्म्मी की तपन । ५ उपकार का बदला । * किसी किसी प्रति में यह श्लोक भी यहाँ पाया जाता है । इस श्लोक का यद्यपि आगे के मार्ग से सम्बन्ध नहीं जुड़ता तथापि इससे इतना अवश्य प्रकट होता है कि यक्ष चित्रकूट में नहीं रहता था । ६ वनवासी । ७ अच्छी तरह हलका ।

आगे रेवा उपल-विषमा विन्ध्य-भू[1] में विशीर्णा[2]—

दीखे है, ज्यों गज-तनु लसे भूत से, रेख-पूर्ण[3] ॥ १९ ॥

तस्यास्तिक्तैर्वनगजमदैर्वासितं वान्तवृष्टि-
र्जम्बूकुञ्जप्रतिहतरयं तोयमादाय गच्छेः ।
अन्तःसारं घन तुलयितुं नानिलः शक्ष्यति त्वां
रिक्तः सर्वो भवति हि लघुः पूर्णता गौरवाय ॥ २० ॥

पीते जाना, जल बरस के, नीर उसका सगन्ध
तीखा वन्य-द्विप[4]-मद-बसा, जम्बु-कुञ्जावरुद्ध[5] ।
होना अन्तर्प्रचुर[6] जिससे वायु पावे न जीते
रीते सारे लघु जगत में पूर्ण हैं श्रेष्ठ होते ॥ २० ॥

नीपं दृष्ट्वा हरितकपिशं केसरैरर्धरूढै-
राविर्भूतप्रथममुकुलाः कन्दलीश्चानुकच्छम् ।
जग्ध्वारण्येष्वधिकसुरभिं गन्धमाघ्राय चोर्व्याः
सारङ्गास्ते जललवमुचः सूचयिष्यन्ति मार्गम् ॥ २१ ॥

नीपों[7] की जो हरितकपिशा[8] मंजरी देख प्यारी,
जो कूलों की नवमुकुलिता[9] कन्दली के अहारी ।
जो भू-गन्ध-प्रचुर सुरभी[10] काननों के विहारी,
वे सारङ्ग[11] ! प्रकट पथ से ले चलेंगे अगारी ॥ २१ ॥

---

१ ऊँची नीची विन्ध्याचल की पथरीली काली भूमि । २ कई धारों में फैली हुई । ३ सफ़ेद राख या खड़िया से चित्रित रेखाओं से पूर्ण । ४ हाथी । ५ जामन के कुञ्जों में रुक कर बहनेवाला । ६ भीतर (जल से) परिपूर्ण । ७ कदम्बों । ८ पीली । ९ नई फूली हुई कदली । १० सुगन्धि (श्रीधर-कोष) । ११ इस शब्द के कई अर्थ होते हैं । यहा पर कोई केवल मोर और कोई केवल हरिन का अर्थ लेते है और कोई कोई पहली, दूसरी, तीसरी पंक्ति के लिए, क्रमशः भौंरा, हाथी और हरिन का अर्थ लेते हैं । यहाँ यह (!) निशान लगा कर इन अर्थों के सिवा, एक और अर्थ, बादल के लिए सम्बोधन, भी लिया है; क्योंकि 'सारङ्ग' बादल का भी नाम है ।

अम्भोबिन्दुग्रहणचतुरांश्चातकान्वीक्षमाणाः
श्रेणीभूताः परिगणनया निर्दिशन्तो बलाकाः ।
त्वामासाद्य स्तनितसमये मानयिष्यन्ति सिद्धाः
सोत्कम्पानि प्रियसहचरीसम्भ्रमालिङ्गितानि ॥ (२) ॥

पानी-बिन्दु-ग्रहण-पटु[1] जो चातकों[2] को दिखाते,
जो आनन्दी तिय-युत, बक-श्रेणियों को गिनाते ।
वे मानेंगे तव गुण अरे ! गर्ज[3] से सिद्ध लोग,
आलिंगेंगे प्रिय तिय-गणों को भयार्ता[4] विलोक ॥ (२) ॥

उत्पश्यामि द्रुतमपि सखे मत्प्रियार्थं यियासोः
कालक्षेपं ककुभसुरभौ पर्वते पर्वते ते ।
शुक्लापाङ्गैः सजलनयनैः स्वागतीकृत्य केकाः
प्रत्युद्यातः कथमपि भवान्गन्तुमाशु व्यवस्येत् ॥ २२ ॥

जाने में तू मम-हित सखा ! शीघ्रता ही करेगा ,
तो भी तू रे ! ककुभ-सुरभी[5] पर्वतों में रमेगा ।
देंगे मान[6] ध्वनियुक्त, शिखी[7], साश्रु हो, श्वेतनेत्र[8],
कैसे होगी द्रुतगमन में[9] प्रीति हे मेघ मित्र ! ॥ २२ ॥

पाण्डुच्छायोपवनवृतयः केतकैः सूचिभिन्नै-
र्नीडारम्भैर्गृहबलिभुजामाकुलग्रामचैत्याः ।
त्वय्यासन्ने परिणतफलश्यामजम्बूवनान्ताः
सम्पत्स्यन्ते कतिपयदिनस्थायिहंसा दशार्णाः ॥ २३ ॥

---

१ पानी का बूँद लेने में चतुर चातक २ गर्जना । ३ डरी हुई जान कर; तेरी गर्जना से तेरा गुण मानेंगे; क्योंकि इसी बहाने उन्हें अपनी भयार्ता प्यारियों के आलिङ्गन का सुख मिलेगा । ४ कुटजपुष्पों से सुगन्धित । ५ आदर या स्वागत । ६ श्वेत नेत्रों वाले मोर । ७ जल्दी जाने में ।

होंगी शुभ्रा उपवनवृती[1], केतकी फूलने से,
ग्रामी[2] वृक्षों पर खग रचेंगे जहां नीड़[3] जी से[4] ।
पाके जम्बू-तरु-युत वन श्यामता से सुपूर्ण—
देखेगा तू, कुछ दिन जहां हंस हैं सो दशार्ण[5] ॥ २३ ॥

तेषां दिक्षु प्रथितविदिशालक्षणां राजधानीं
गत्वा सद्यः फलमविकलं कामुकत्वस्य लब्धा ॥
तीरोपान्तस्तनितसुभगं पास्यसि स्वादु यस्मा-
त्सभ्रूभङ्गं मुखमिव पयो वेत्रवत्याश्चलोर्मि ॥ २४ ॥

आगे उसकी प्रथित[6] विदिशा राजधानी मिलेगी,
कामेच्छा भी सफलित वहां पूर्ण तेरी सधेगी ।
पीवेगा तू जब सुख से वेत्रवन्ती सुनीर[7]
सभ्रूभङ्गा[8] युवति-मुख सा जो तरङ्गी अधीर[9] ॥ २४ ॥

नीचैराख्यं गिरिमधिवसेस्तत्र विश्रामहेतो-
स्त्वत्सम्पर्कात्पुलकितमिव प्रौढपुष्पैः कदम्बैः ॥
यः पण्यस्त्रीरतिपरिमलोद्गारिभिर्नागराणा-
मुद्दामानि प्रथयति शिलावेश्मभिर्यौवनानि ॥ २५ ॥

है विश्रान्ती-हित गिरि वहां नीच नामी विशाल,
होगा तेरे संग पुलक[10] सा शैल नीप-प्रफुल्ल[11] ।
खोहों से रे ! निकल गणिका-अंगरागी[11] सुवास—
देती है[12] सो नगर-युवक-स्वैरता का सुभास[12] ॥ २५ ॥

---

१ बागों की सीमायें । २ ग्रामीण । ३ घोंसले । ४ मन लगाकर । ५ दशार्ण नाम के प्रदेश में तेरे जाने से ऐसी शोभा होगी; तेरे जाने पर वहां हंस कुछ ही दिन और रहेंगे । ६ प्रसिद्ध । ७ वेत्रवन्ती नदी का स्वादुयुक्त नीर । ८ भ्रूविलासवाली । ९ तरंगों के कारण चञ्चल । १० कदम्ब से फूला हुआ पुलकित सा । ११ रति-समय के सुगन्धित लेप की । १२ प्रकट करती है ।

विश्रान्तः सन्व्रज वननदीतीरजातानि सिञ्च-
न्नुद्यानानां नवजलकणैर्यूथिकाजालकानि ।
गण्डस्वेदापनयनरुजा क्लान्तकर्णोत्पलानां
छायादानात्क्षणपरिचितः पुष्पलावीमुखानाम् ॥ २६ ॥

सींचे जाना, कुछ ठहर के, मालती सीकरों[1] से
उद्यानों में वन-सरित के तीर हैं जो भरोसे[2] ।
देना छाया घन ! सुमुख पै प्रेम से मालिनों के
कर्णधारी[3] कमल मुरझे स्वेद से हैं जिन्हींके ॥ २६ ॥

वक्रः पन्था यदपि भवतः प्रस्थितस्योत्तराशां
सौधोत्सङ्गप्रणयविमुखो मा स्म भूरुज्जयिन्याः ।
विद्युद्दामस्फुरितचकितैस्तत्र पौराङ्गनानां
लोलापाङ्गैर्यदि न रमसे लोचनैर्वञ्चितोऽसि ॥२७॥

होगा तेरा पथ कुटिल जो छोड़ देगा उदीची
उज्जैनी के भवन लखना ठीक भी है तुम्हें जी !
विद्युत्-आभा चकित-नयनी[4] हैं वहां चारु नारी
देखे जो तू न चल[5] दृग वे तो वृथा जन्मधारी ॥ २७ ॥

वीचिक्षोभस्तनितविहगश्रेणिकाञ्चीगुणायाः
संसर्पन्त्याः स्खलितसुभगं दर्शितावर्तनाभेः ।
निर्विन्ध्यायाः पथि भव रसाभ्यन्तरः संनिपत्य
स्त्रीणामाद्यं प्रणयवचनं विभ्रमो हि प्रियेषु ॥ २८ ॥

हंस श्रेणी सुरव करती वीचि[6] से किङ्किनी सी,
दर्शाती जो निज भवँर की नाभि सद्गामिनी[7] सी ।

---

१ जलकण । २ जो तेरे भरोसे हैं । ३ कानों से कपोलों पर लटकनेवाले । ४ बिजली की चमक से चकित होनेवाले हैं नेत्र जिनके । ५ चञ्चल । ६ तरंग । ७ सुन्दर रीति से गमन करनेवाली ।

निर्विन्ध्या से सरस रत हो मेघ ! तू मोद पाना,
स्त्री के प्रेमी वचन पहले भाव ही का बताना ॥ २८ ॥

वेणीभूतप्रतनुसलिलासावतीतस्य सिन्धुः
पाण्डुच्छाया तटरुहतरुभ्रंशिभिर्जीर्णपर्णैः ।
सौभाग्यं ते सुभग विरहावस्थया व्यञ्जयन्ती
कार्श्यं येन त्यजति विधिना स त्वयैवोपपाद्यः ॥ २९ ॥

धारा वेणी-सम कृश हुई दुर्बला भासती है,
पाके पत्ते गिर कर मनो पाण्डुता[1] छा रही है ।
त्वत सौभाग्या[2] विरह-गति औ प्रेम तेरा जनावे,
कोई तो भी यतन करके क्षीणता तू मिटावे ॥ २९ ॥

प्राप्यावन्तीमुदयनकथाकोविदग्रामवृद्धा-
न्पूर्वोद्दिष्टामनुसर पुरीं श्रीविशालां विशालाम् ।
स्वल्पीभूते सुचरितफले स्वर्गिणां गां गतानां
शेषैः पुण्यैर्हृतमिव दिवः कान्तिमत्खण्डमेकम् ॥ ३० ॥

देशावन्ती[3] पहुँच फिर तू वेगि जाना उजैनी,
गाते हैं रे ! उदयन कथा को जहां वृद्ध ज्ञानी ।
कैसी शोभा-युत, वह मनो स्वर्ग का भाग भारी
लाये बाकी सुकृत-वश जो भूमि में पुण्यकारी[4] ॥ ३० ॥

दीर्घीकुर्वन्पटु मदकलं कूजितं सारसानां
प्रत्यूषेषु स्फुटितकमलामोदमैत्रीकषायः ।
यत्र स्त्रीणां हरति सुरतग्लानिमङ्गानुकूलः
शिप्रावातः प्रियतम इव प्रार्थनाचाटुकारः ॥ ३१ ॥

---

१ पीलापन । २ तुझे अपना सुभग (प्यारा) माननेवाला । सविन्ध्या । ३ अवन्ती नामक प्रदेश । ४ पुण्यात्मा लोग, अपने शेष सुकृत के बदले में, स्वर्ग से ले आये हैं।

शिप्रा-वात[1], ध्वनि सरस जो सारसों की बढ़ाता,
जो कंजों से परिमलित[2] हो प्रात में मोद देता ।
स्त्री-लोगों की रति-जनित सो ग्लानि यों है मिटाता,
प्रार्थी हो के प्रियतम मनो मानिनी को मनाता ॥ ३१ ॥

हारांस्तारांस्तरलगुटिकान्कोटिशः शङ्खशुक्तीः
शष्पश्यामान्मरकतमणीनुन्मयूखप्ररोहान् ।
दृष्ट्वा यस्यां विपणिरचिताग्विद्रुमाणां च भङ्गा-
न्संलक्ष्यन्ते सलिलनिधयस्तोयमात्रावशेषाः ॥ (३) ॥

हीरे-मोती-जटित कितने हार औ' शंख-शुक्ति[3],
पन्ने सोहें हरित तृण से छोड़ते दिव्य ज्योति ।
त्यों मूँगे भी बहुत दिखती हाट-शोभा विशेष,
मानो रत्नाकर जलधि में नीर ही आज शेष* ॥ (३) ॥

प्रद्योतस्य प्रियदुहितरं वत्सराजोऽत्र जह्रे
हैमन्तालद्रुमवनमभूदत्र तस्यैव राज्ञः ।
अत्रोद्भ्रान्तः किल नलगिरिः स्तम्भमुत्पाट्य दर्पा-
दित्यागन्तून्रमयति जनो यत्र बन्धूनभिज्ञः ॥ (४) ॥

"ले भागे[4] थे उदयन यहां चारु प्रद्योत कन्या,
उस्का प्यारा उपवन यहां हेम के ताड़[5] नाना ।
उत्पाटा[6] था सु-नलगिरि[7] ने स्तम्भ सो घूमना है"
यों वार्ता से जन पथिक को मोद देते जहां है ॥ (४) ॥

---

१ वायु । २ परिमल-मिलित । ३ सीपी । *अथवा, "मूँगा से जो रचित, दिखती हाट है शोभ-खानी, मानो रत्नाकर जलधि में शेष है सिर्फ पानी" । मूँगा से रचित बाजार देख कर शंका होती है कि अब रत्नाकर में केवल पानी ही रह गया होगा और मूँगा रत्न आदि सब यहीं ले आये । ४ हरण की थी । ५ ताड़ वृक्ष । ६ उखाड़ा था । ७ नाम का हाथी ।

पत्रश्यामा दिनकरहयस्पर्धिनो यत्र वाहाः
शैलोदग्रास्त्वमिव करिणो वृष्टिमन्तः प्रभेदात् ।
योधाग्रण्यः प्रतिदशमुखं संयुगे तस्थिवांसः
प्रत्यादिष्टाभरणरुचयश्चन्द्रहासव्रणाङ्कैः ॥ (५) ॥

वर्ण-स्पर्धा जहँ रवि-हयों से करें अश्व चारु,
बर्साते त्वत्समगज, नग-क्रीड़ते,[1] दान-धार[2] ।
भारी योद्धा दशमुख-रण-प्राप्त मानें निशङ्क —
शोभा देते तनु पर धरे चन्द्रहास-व्रणाङ्क[3] ॥ (५ †) ॥

जालोद्गीर्णैरुपचितवपुः केशसंस्कारधूपै-
र्बन्धुप्रीत्या भवनशिखिभिर्दत्तनृत्योपहारः ।
हर्म्येष्वस्याः कुसुमसुरभिष्वध्वखेदन्नयेथाः
लक्ष्मीं पश्यँल्ललितवनितापादरागाङ्कितेषु ॥ ३२ ॥

जालों[4] से ले कच-सुरभिता धूप[5] पीना अहार
देंगे बन्धु प्रिय गृह-शिखी[6] प्रेम-नृत्योपहार ।
खोना श्रान्ती सुमन-सुरभी-सौध[7]-शोभा निहार
हर्म्यों[8] में हैं ललित ललना-पाद-रागाङ्क[9] चारु ॥ ३२ ॥

भर्तुः कण्ठच्छविरिति गणैः सादरं वीक्ष्यमाणः
पुण्यं यायास्त्रिभुवनगुरोर्धाम चण्डीश्वरस्य ।
धूतोद्यानं कुवलयरजोगन्धिभिर्गन्धवत्या-
स्तोयक्रीडानिरतयुवतिस्नानतिक्तैर्मरुद्भिः ॥ ३३ ॥

१ शैल में क्रीड़ा करते हुए । २ मदधार । ३ चन्द्रहास (रावण की तलवार या कोई भी तलवार) के व्रणों के चिह्न । † पूर्वभाग में ये पांच प्रक्षिप्त श्लोक माने गये है । ४ झरोखों से । ५ बालों को सुगन्धित करने वाली धूप । ६ पालतू मोर । ७ फूलों से सुगन्धित महल । ८ महलों । ९ सुन्दर स्त्रियों के पैरों के यावक के चिह्न ।

आगे जाना त्रिभुवनपती शम्भु के धाम मित्र !
सन्मानेंगे गण[1] लख तुझे स्वामिकंठी[2] विचित्र ।
वृक्षश्रेणी, कुमुद-रज की वायु जो है कँपाती
स्त्री-क्रीड़ा से परिमलित सो गन्धवन्ती[3] बनाती ॥ ३३ ॥

अप्यन्यस्मिञ्जलधर महाकालमासाद्य काले
स्थातव्यं ते नयनविषयं यावदत्येति भानुः ।
कुर्वन्सन्ध्याबलिपटहतां शूलिनः श्लाघनीया-
मामन्द्राणां फलमविकलं लप्स्यते गर्जितानाम् ॥ ३४ ॥

संध्या से जो प्रथम पहुँचे तू महाकाल-धाम
शान्ती लेना जब तक दिखे, मेघ रे ! भानु-घाम ।
शम्भू-पूजा-समय[4] लख के दुन्दुभी सी बजाना
प्यारे ! पूरी सफल अपनी गर्जना को बनाना ॥ ३४ ॥

पादन्यासैः क्वणितरशनास्तत्र लीलावधूतै-
रत्नच्छायाखचितवलिभिश्चामरैः क्लान्त हस्ताः ।
वेश्यास्त्वत्तो नखपदसुखान्प्राप्य वर्षाग्रबिन्दू-
नामोक्ष्यन्ते त्वयि मधुकरश्रेणिदीर्घान्कटाक्षान् ॥ ३५ ॥

नाचें वेश्या सुललित जहाँ किंकिनी बाजती हैं,
रत्नाभा से खचित चमरें ढोरते वे थकी हैं ।
आनन्दी हो प्रिय-नख-क्षतों में नये बूँद लेंगी,
तेरे आगे अलि-अवलि-से नेत्र बाँके करेंगी ॥ ३५ ॥

पश्चादुच्चैर्भुजतरुवनं मण्डलेनाभिलीनः
सान्ध्यं तेजः प्रतिनवजपापुष्परक्तं दधानः ।

---

१ शिव-गण । २ अपने स्वामी शिव के कंठ के समान रङ्गवाला, नील-कण्ठी मेघ । ३ नाम की नदी । ४ संध्या समय ।

नृत्यारम्भे हर पशुपतेरार्द्रनागाजिनेच्छां
शान्तोद्वेगस्तिमितनयनं दृष्टभक्तिर्भवान्या ॥ ३६ ॥

सन्ध्या-लाली, तनु पर, जपा-पुष्प-सी रम्य पाना ।
शम्भू के से भुज-तरु-वनों पै वृताकार[1] छाना ॥
शेच्छा[2] गीले गज-चरम की नृत्य में पूर्ण होगी ।
शान्तस्था हो, सरुचि, गिरिजा भक्ति तेरी लखेगी ॥ ३६ ॥

गच्छन्तीनां रमणवसतिं योषितां तत्र नक्तं
रुद्धालोके नरपतिपथे सूचिभेद्यैस्तमोभिः ।
सौदामिन्या कनकनिकषस्निग्धया दर्शयोर्वीं
तोयोत्सर्गस्तनितमुखरो मा स्म भूर्विक्लवास्ताः ॥३७॥

जाती होंगी प्रिय-गृह वहां वाम[3] कृष्णाभिसारी[3] ।
घेरा होगा निविड़ तम ने राज का मार्ग भारी ॥
विद्युत्-आभा, निकष[4] पर ज्यों स्वर्ण-रेखा, दिखाना[5] ।
वर्षा, घोर ध्वनि, न करना, भीरु हैं वे, बचाना ॥ ३७ ॥

तां कस्याञ्चिद्भवनवलभौ सुप्तपारावतायां
नीत्वा रात्रिं चिरविलसनात्खिन्नविद्युत्कलत्रः ।
दृष्टे सूर्ये पुनरपि भवान्वाहयेदध्वशेषं
मन्दायन्ते न खलु सुहृदामभ्युपेतार्थकृत्याः ॥ ३८ ॥

१ मंडलाकार, गोलाकार । २ श = शिव (श्रीधर कोष) + इच्छा = शिव की इच्छा । सन्ध्या की, जपापुष्प के समान, लाली पाकर यदि तू वन में शिवभुजारूपी तरुओं पर छा जावेगा तो उस, नृत्य के समय, शिव जी की, गीले गजचर्म ओढ़ने की, इच्छा पूर्ण हो जायगी । ३ कृष्णाभिसारिका, नायिका, जो अँधेरी रात में अपने प्यारे से मिलना स्थिर करती है । ४ कसौटी । ५ अँधेरे में, जिससे उन्हें मार्ग मिलने में सहायता हो ।

होगी तेरी चिरविलसन-श्रान्त[1] विद्युत सुभेवा[2]
शान्ती लेना छत पर, निशी-सुख होंगे परेवा[3] ॥
बाकी मार्ग-क्रमण करना देख के, मेघ ! सूर्य्य,
ढीले होते सहृदय नहीं मित्र का मान कार्य्य ॥ ३८ ॥

तस्मिन्काले नयनसलिलं योषितां खण्डितानां
शान्तिं नेय प्रणयिभिरतो वर्त्म भानोस्त्यजाशु।
प्रालेयास्रं कमलवदनात्सोऽपि हर्तुं नलिन्याः
प्रत्यावृत्तस्त्वयि कररुधि स्यादनल्पाभ्यसूयः ॥ ३९ ॥

प्रेमी पोंछे उस समय में खण्डिताऽश्रू[4] विचित्र ।
सो तू जल्दी जलद ! तजना सूर्य्य का मार्ग मित्र !
पोंछेगा भी वह नलिनि[5] की, कंज-तुण्डाश्रु,[6] ओस[5] ।
रोकेगा तू कर, तरणि तो क्रुद्ध होगा विशेष ॥ ३९ ॥

गम्भीरायाः पयसि सरितश्चेतसीव प्रसन्ने
छायात्मापि प्रकृतिसुभगो लप्स्यते ते प्रवेशम् ।
तस्मादस्याः कुमुदविशदान्यर्हसि त्वं न धैर्या-
न्मोघीकर्तुं चटुलशफरोद्वर्तनप्रेक्षितानि ॥ ४० ॥

गम्भीरा का शुचि जल मनो शुद्ध चित्त-प्रदेश ।
तेरी छाया सुभग उसमें ज्यों करेगी प्रवेश ॥
त्योंही उसके कुमुद-शफरोल्लासरूपी कटाक्ष[7] ।
होगा कैसे विफल करना धैर्य्य से, मेघ दक्ष[8] ! ॥ ४० ॥

---

१ बहुत देर तक चमकने के कारण थकी हुई । सुन्दर भेव = भाव (श्रीधर-कोष) वाली । २ कबूतर । ४ वह नायिका जो अन्य स्त्री से पति के रममाण होने के चिह्न देख कर, प्रातःकाल में, हताश होकर, आंसू बहाती है । ५ कमलिनी के कमलमुख के आंसू या ओस । ६ धोली मछलियों का उछलना ही जिसके काम नेत्रों का कटाक्ष है । ७ अथवा, वृष्टाई से विफल करना है नहीं योग्य, दक्ष

तस्याः किञ्चित्करधृतमिव प्राप्तवानीरशाखं
हृत्वा नीलं सलिलवसनं मुक्तरोधोनितम्बम्।
प्रस्थानं ते कथमपि सखे लम्बमानस्य भावि
ज्ञातास्वादो विवृतजघनां को विहातुं समर्थः ॥ ४१ ॥

उसका* नीला जल-पट तट श्रोणि[1] से तू हरेगा,
थोड़ा सा जो सु-कर-धृत[2] सा वेत्रशाखा छुएगा।
आगे तू भी तब सरस हो मेघ! कैसे चलेगा?
स्वादज्ञाता[3] जघन-उघरी-नारि कैसे तजेगा? ॥ ४१ ॥

त्वच्चिष्यन्दोच्छ्वसितवसुधागन्धसम्पर्करम्यः
स्रोतोरन्ध्रध्वनितसुभगं दन्तिभिः पीयमानः।
नीचैर्वास्यत्युपजिगमिषोर्देवपूर्वं गिरिं ते।
शीतो वायुः परिणमयिता काननोदुम्बराणाम् ॥ ४२ ॥

वर्षा से, जो पवन, वसुधा-गन्ध से, है सुवासी,
जो दन्ती सुध्वनियुत पियें, शुण्ड से, हो उलासी[4]!
जाते तेरे सुर-गिरि, वही वायु पंखा झलेगी,
सीरी है जो परिणत[5] वनोदुम्बरों[6] को करेगी ॥ ४२ ॥

तत्र स्कन्दं नियतवसतिं पुष्पमेघीकृतात्मा
पुष्पासारैः स्नपयतु भवान्व्योमगङ्गाजलार्द्रैः।

---

*विवश होकर ऐसे सर्वनामों का रूप हमें कहाँ कहाँ इस तरह बदलना पड़ा है। खड़ी बोली के सर्वमान्य आचार्य पं० श्रीधर पाठक तो प्रायः ये शब्द इसी तरह लिखते हैं। जैसेः—

"पुरुष विज्ञवर वो हैं **जिस्का** अनुकम्पायुत सच्चा मन"।

"श्रान्तपथिक" ४३ वीं पंक्ति।

१ तटरूपी नितम्ब। २ पकड़ा हुआ। वेत्रशाखा छूता **हुआ** वह जल पर ऐसा जान पड़ेगा **जैसे** उसने, लज्जापूर्वक, अपने हाथों से, थोड़ा सा, पकड़ लिया हो। ३ रसज्ञ। ४ आनन्दित। ५ पक्व। ६ वन के गूलर-वृक्ष।

रक्षाहेतोर्नवशशिभृता वासवीनां चमूना-
मत्यादित्यं हुतवहमुखे संभृतं तद्धि तेजः ॥ ४३ ॥

वासी नित्यप्रति गुह[1] वहाँ पुष्प के मेघ होना,
तू, स्वर्गंगा-जल-युत शुभ-स्नान उनको कराना ।
रक्खा था जो अनल[2]-मुख में शम्भु ने तेज भारी,
तेजस्वी वे अधिक रवि से, इन्द्र-सेनाधिकारी[3] ॥ ४३ ॥

ज्योतिर्लेखावलयि गलितं यस्य बर्हं भवानी
पुत्रप्रेम्णा कुवलयदलप्रापि कर्णे करोति ।
धौतापाङ्गं हरशशिरुचा पावकेस्तं मयूरं
पश्चादद्रिग्रहणगुरुभिर्गर्जितैर्नर्तयेथाः ॥ ४४ ॥

आभावाले[4] गलित[5] बरही-पंख ले के भवानी—
धारे कर्णोत्पल[6] तज, सुत-प्रेम से; मोदमानी ।
कोयें[7] में है शिव-शशि-प्रभा स्वामि का मोर स्याना
तू गम्भीरध्वनि अचल में ला उसी को नचाना ॥ ४४ ॥

आराध्यैनं शरवणभवं देवमुल्लङ्घयिन्धा
सिद्धद्वंद्वैर्जलकणभयाद्वीणिभिर्मुक्तमार्गः ।
व्यालम्बेथाः सुरभितनयालम्भजां मानयिष्यन्
स्रोतोमूर्त्या भुवि परिणतां रन्तिदेवस्य कीर्त्तिम् ॥ ४५ ॥

आगे जाना जलद ! गुह को पूज के, मार्ग देगा—
सिद्धा-जोटी, उदक न पड़े वीण पै सो डरेंगी ।

---

१ स्वामिकार्तिक । २ आग । ३ तारकासुर से इन्द्र-सेना की रक्षा करने के लिए शिवजी ने अपना तेज अग्नि-मुख में रख दिया था, उसी से कार्तिकेय पैदा हुए और उन्होंने इन्द्र-सेना के अधिपति बन कर तारकासुर का वध किया । ४ चमकीले । ५ गिरे हुए । ६ कानों के कमल । ७ नेत्रकोर ।

सत्कारों से घन ! उतरना चारु गोमेधजा[1] को,
　　कीर्ती-धारा[2] सित धरनि में रन्तिदेव-प्रिया[2] जो ॥ ४५ ॥

त्वय्यादातुं जलमवनते शार्ङ्गिणो वर्णचौरे ।
　　तस्याः सिन्धोः पृथुमपि तनुं दूरभावात्प्रवाहम्
प्रेक्षिष्यन्ते गगनगतयो नूनमावर्ज्य दृष्टी-
　　रेकं मुक्तागुणमिव भुवः स्थूलमध्येन्द्रनीलम् ॥ ४६ ॥

चौड़ी है जो, पर लघु लिखे दूर से, सर्व ओर,
　　लेगा पानी नमित जब तू विष्णु का रङ्ग-चोर !
देखेंगे सो छवि मुदित हो व्योमगामी सुरौघ,
　　मुक्ता-माला महि-गल मनो बीच में इन्द्रनील[3] ॥ ४६ ॥

तामुत्तीर्य व्रज परिचितभ्रूलताविभ्रमाणां
　　पक्ष्मोत्क्षेपादुपरि विलसत्कृष्णसारप्रभाणाम् ।
कुन्दक्षेपानुगमधुकरश्रीमुषामात्मबिम्बं
　　पात्रीकुर्वन् दशपुरवधूनेत्रकौतूहलानाम् ॥ ४७ ॥

आगे, जाते, दशपुर-वधू भ्रूविलासप्रवीणा—
　　देखेंगी, हे जलद ! तुझको लालसा-प्रेम-पूर्णा ।
काले लाले दृग सित पलों-संग[4] वे यों सुहाते,
　　जैसे जाते अलिगण चलित[5] कुन्द-पीछे लखाते ॥ ४७ ॥

ब्रह्मावर्तं जनपदमथच्छायया गाहमानः
　　क्षेत्रं क्षत्रप्रधनपिशुनं कौरवं तद्भजेथाः ।

---

१ गोमेध यज्ञ से उत्पन्न हुई चम्बल नदी। २ रन्तिदेव राजा की प्यारी कीर्तिधारा। ३ आकाशवालों को पतली दिखनेवाली चम्बल पृथ्वी के गले में मोतियों की माला है और उसमें झुक कर पानी लेनेवाला नीला मेघ उस माला के बीच में बड़ा इन्द्र-नील जड़ा है। ४ गोरी पलकों के साथ। ५ हिलते हुए।

राजन्यानां सितशरशतैर्यत्र गाण्डीवधन्वा
धारापातैस्त्वमिव कमलान्यभ्यवर्षन् मुखानि ॥ ४८ ॥

छायारूप प्रथम घन तू ब्रह्म-आवर्त[1] जाना,
क्षत्री-युद्ध-स्थल, फिर, कुरुक्षेत्र को तू सिधाना ।
राजाओं के शिर पर जहाँ पार्थ[2] ने बाण-वर्षा—
की थी, जैसे कमल-गण पे तू करे धार-वर्षा ॥ ४८ ॥

हित्वा हालमभिमतरसां रेवतीलोचनाङ्कां
बंधुप्रीत्या समरविमुखो लाङ्गली याः सिषेवे ।
कृत्वा तासामभिगममपां सौम्य सारस्वतीना-
मन्तःशुद्धस्त्वमपि भविता वर्णमात्रेण कृष्णः ॥ ४९ ॥

बन्धुप्रेमी बन विमुख हो युद्ध से, श्रीहलाङ्क[3],
हाला[4] त्यागी सुरस जिसमें रेवती-लोचनाङ्क[5] ।
सेवी[6] सारस्वतजल हुए, सौम्य ! सो तोय मात्र[7]—
पीके होगा शुचिहृदय तू मात्र, है कृष्णगात्र ॥ ४९ ॥

तस्माद्गच्छेरनुकनखलं शैलराजावतीर्णां
जह्नोः कन्यां सगरतनयस्वर्गसोपानपङ्क्तिम् ।

---

१ ब्रह्मावर्त प्रदेश । २ अर्जुन । ३ हल है अङ्क में जिनके = बलराम । ४ "सुरा हलिप्रिया हाला परिस्रुद्वरुणात्मजा" (अमर) । ५ रेवती (बलराम की स्त्री) के नेत्रों के अंक जिसमें प्रतिबिम्बित हैं ऐसी स्वच्छ हाला । इससे कवि ने यह ध्वनित किया है कि जब तक कौरव-पाण्डव-युद्ध हुआ तब तक बलराम ने, बन्धुकलह के खेद से, केवल मदिरा ही नहीं त्यागी थी; किन्तु स्त्री-विलास का भी त्याग किया था । 'हाला' शब्द रख कर कालिदास ने इस भाव को और भी पुष्ट किया है; क्योंकि 'हाला' और 'हलिप्रिया' रेवती के भी नाम हो सकते हैं; 'हाल' और 'हली' बलराम को कहते ही हैं । ६ सरस्वती का जल-सेवन किया । ७ केवल, सिर्फ़ ।

गौरीवक्त्रभ्रुकुटिरचनां या विहस्येव फेनैः
शम्भोः केशग्रहणमकरोदिन्दुलग्नोर्मिहस्ता ॥ ५० ॥

आगे जाना तुहिनगिरि[1] से कनखल-प्रान्तवाही[2]—
गङ्गा को, जो सगर-सुत की स्वर्ग-सोपान-राजी ।
जो गौरि-भ्रू-कुटिल लख के फेन का हास्य लाती,
श्रीशम्भू के कच, शशि लुए ऊर्मि-हाथों, सुहाती ॥ ५० ॥

तस्याः पातुं सुरगज इव व्योम्नि पश्चार्धलम्बी
त्वञ्चेदच्छस्फटिकविशदं तर्कयेस्तिर्यगम्भः ।
संसर्पन्त्याः सपदि भवतः स्रोतसिच्छायया सौ
स्यादस्थानोपगतयमुनासङ्गमेवाभिरामा ॥ ५१ ॥

गङ्गा में तू विमल जल के हेतु आगे बढ़ेगा,
पश्चात्[3] काया रख गगन में दिग्गजों सा झुकेगा ।
तेरी छाया चलित तब तो धार में यों लसेगी,
कालिन्दी सी बिन मिलन ही गङ्ग में आ मिलेगी ॥ ५१ ॥

आसीनानां सुरभितशिलं नाभिगन्धैर्मृगाणां
तस्या एव प्रभवमचलं प्राप्य गौरं तुषारैः ।
वक्ष्यस्यध्वश्रमविनयने तस्य शृङ्गे निषण्णः
शोभां शुभ्रत्रिनयनवृषोत्खातपङ्कोपमेयाम ॥ ५२ ॥

जाना गंगा-जनक नग पै शीत[3] से जो प्रकाशा,
हैं कस्तूरी-हिरण बिठने से शिलायें सुवासी ।
उसके श्रान्ती-हर[4] शिखर पै तू लसेगा सखा ! यों,
जैसे शम्भू-वृषभ सित[5] से पंक काला खुदा हो* ॥ ५२ ॥

---

१ हिमालय से निकल कर कनखल में बहनेवाली । २ पीछे की । ३ हिम (श्रीधर-कोष) । ४ मार्ग की थकावट दूर करनेवाली । ५ श्वेत नन्दी ।

*अथवा—"तू विश्रान्ती-कर शिखर पै यों लसेगा सखा हो !
जैसे शम्भू वृषभसिर पै पङ्क काला लगा हो !"

तं चेद्वायौ सरति सरलस्कन्धसङ्घट्टजन्मा
बाधेतोल्काक्षपितचमरीवालभारो दवाग्निः ।
अर्हस्येनं शमयितुमलं वारिधारासहस्रै-
रापन्नार्तिप्रशमनफलाः सम्पदो ह्युत्तमानाम् ॥ ५३ ॥

जन्मे अग्नी, सरल[1] घिस के, वायु के योग से जो,
दावाग्नी से चमरि-कच[2] औ शैल दुःखी जलें जो;
तो तू धाराऽयुत[3] बरस के अग्नि को शान्ति देना,
पुण्यात्मा-श्री-फल[4] मधुर है दुःखितापद्[5] मिटाना ॥ ५३ ॥

ये त्वां मुक्तध्वनिमसहनाः स्वाङ्गभङ्गाय तस्मिन्
दर्पोत्सेकादुपरि शरभा लङ्घयिष्यन्त्यलङ्घ्यम् ।
तान्कुर्वीथास्तुमुलकरकावृष्टिहासावकीर्णान्
के वा न स्युः परिभवपदं निष्फलारम्भयत्नाः ॥ ५४ ॥

तेरी वाणी न सह करके स्वाङ्ग[6] को भङ्गनार्थे;
गर्वी होके शरभ[7] तुझको व्यर्थ उल्लंघनार्थे—
कूदेंगे रे ! करक[8] बरसा-हास्य से तू भगाना;
व्यर्थारम्भी यतन करके कौन होता सयाना ? ॥ ५४ ॥

तत्र व्यक्तं दृषदि चरणन्यासमर्धेन्दुमौलेः
शश्वत्सिद्धैरुपचितबलिं भक्तिनम्रः परीयाः ।
यस्मिन् दृष्टे करणविगमाद्दूरमुद्धूतपापाः
कल्पन्तेऽस्य स्थिरगणपदप्राप्तये श्रद्दधानाः ॥ ५५ ॥

१ देवदारु । २ सुरा-गाय के बाल; जिनके चँवर बनते हैं । ३ अयुत = सहस्रधारा । ४ पुण्यात्मा की सम्पदा का फल । ५ दुखियों की आपदा । ६ अपना शरीर तोड़ने के लिए । ७ आठ पैरवाले पहाड़ी मृग । ८ ओलों का वर्षारूपी हास्य ।

शम्भू-पादाङ्कित शुचि शिला को वहां सिद्ध नित्य—
पूजें हैं, तू कर प्रदक्षिणा नम्र होना सभक्ति ।
श्रद्धावाले अनघ बनते ले उसीका सुदर्श,
मृत्यू होने पर प्रमथ[1] का मान पाते सहर्ष ॥ २५

शब्दायन्ते मधुरमनिलैः कीचकाः पूर्यमाणाः
संरक्ताभिस्त्रिपुरविजयो गीयते किन्नरीभिः ।
निर्ह्रादस्ते मुरज इव चेत् कन्दरेषु ध्वनिः स्यात्
सङ्गीतार्थो ननु पशुपतेस्तत्र भावी समग्रः ॥ २६ ।

देते वेणु[2]-ध्वनि मधुर हैं वायु से पूर्ण, मीत !
गातीं प्रेमी, त्रिपुर-जय[3] के, किन्नरी, चारु गीत ।
जो तेरी भी ध्वनि मुरज[4] सी कन्दरों में बजेगी,
तो सामग्री सकल शिव के गान की पूर्ण होगी ॥ २६ ॥

प्रालेयाद्रेरुपतटमतिक्रम्य तांस्तान् विशेषान्
हंसद्वारं भृगुपतियशोवर्त्म यत्क्रौञ्चरन्ध्रम् ।
तेनोदीचीं दिशमनुसरेस्तिर्यगायामशोभी
श्यामः पादो बलिनियमनाभ्युद्यत स्येव विष्णोः ॥ २७ ।

आगे जाके हिमनग-तटों में मिले एक मार्ग—
हंसों का, जो परशुधर की कीर्ति का क्रौंचरन्ध्र[5] ।
तिर्छा लम्बा तनु कर वहां उत्तरी ओर, मेघ !—
जाना जैसे बलि[6]-छलि हरी-पाद[7] हो श्याम, दीर्घ ॥ २७ ॥

१ सम्माननीय शिवगण । २ बांस । ३ शिव के, त्रिपुरासुर-विजय-विषयक, गीत । ४ मृदङ्ग । ६ क्रौंचरन्ध्र नामक घाटी । जब परशुरामजी शङ्करजी से धनुर्विद्या सीख चुके तब अनुभव देखने के लिए वहीं कैलास के पास, हिमालय के क्रौंच नामक स्थान में, उन्होंने एक बाण चलाया, जिससे पहाड़ कट कर विवर (रन्ध्र या छिद्र) हो गया; जो हंसों का मानसरोवर जाने के लिए मार्ग है । ६ बलि को छलते समय विष्णु का चरण ।

गत्वा चोर्ध्वं दशमुखभुजोच्छ्वासितप्रस्थसन्धेः
कैलासस्य त्रिदशवनितादर्पणस्यातिथिः स्याः ।
तुङ्गोच्छायैः कुमुदविशदैर्यो वितत्य स्थितः खं
राशीभूतः प्रतिदिनमिव त्र्यम्बकस्याट्टहासः ॥ ५८ ॥

आगे जा तू अतिथि बनना[1] रौप्य[2] कैलास-शृङ्ग—
ऊँचे हैं जो दशमुख-भुजों ने किये थे प्रभङ्ग ।
जो[3] देवस्त्री-मुकुर[4], नलिन-श्वेत[5] छाया अकाश,
राशीभूत प्रतिदिन[6] मनो शम्भु का अट्टहास ॥ ५८ ॥

उत्पश्यामि त्वयि तटगते स्निग्धभिन्नाञ्जनाभे
सद्यःकृत्तद्विरददशनच्छेदगौरस्य तस्य ।
शोभामद्रेः स्तिमितनयनप्रेक्षणीयां भवित्री-
मंसन्यस्ते सति हलभृतो मेचके वाससीव ॥ ५९ ॥

तेरी स्निग्धाञ्जन[7]-सम, सखा ! श्याम आभा निराली ,
हाली[8] छिन्न द्विप-रद-सदृश[9] शैल की है उजाली ।
होगी शोभा तव, शिखर पै, पेखने-योग्य प्यारी ,
जैसे नीला पट हलधर-स्कन्ध में[10] सौख्यकारी ॥ ५९ ॥

हित्वा तस्मिन्भुजगवलयं शम्भुना दत्तहस्ता
क्रीडाशैले यदि च विचरेत्पादचारेण गौरी ।
भङ्गीभक्त्या विरचितवपुः स्तम्भितान्तर्जलौघः
सोपानत्वं व्रज पदसुखस्पर्शमारोहणेषु ॥ ६० ॥

१ कैलास पर विश्राम लेना । २ चाँदी । ३ उच्च कैलास । ४ दर्पण । ५ कमल-सदृश श्वेत । ६ प्रति दिन का जमा हुआ । ७ चिकना पीसा हुआ अञ्जन । ८ हाल के चीरे हुए हाथी-दांत के समान । ९ बलदाऊ जी के कांधे पर ।

जो शम्भू के, अ-बलय फणी[1], हस्त में हस्तधारी[2] —
जाते क्रीड़ा-नग पर दिखे पार्वती पादचारी[3] ;
तो तू स्तब्ध स-जल करके बांध देना निसेनी ,
होगी, छूते चरण, चढ़ने में वही शान्तिदेनी ॥ ६० ॥

तत्रावश्यं वलयकुलिशोद्घट्टनोद्गीर्णतोयं
नेष्यन्ति त्वां सुरयुवतयो यन्त्रधारागृहत्वम् ।
ताभ्यो मोक्षस्तव यदि सखे धर्मलब्धस्य न स्या-
त्क्रीडालोलाः श्रवणपरुषैर्गर्जितैर्भीषयेस्ताः ॥ ६१ ॥

देव-स्त्री, हे घन, वलय की कोर से मार देंगी;
तेरी ही वे जल-कल[4] बना नीर की धार लेंगी ।
गर्मी में तू यदि न छुटने शीघ्र पावे वहाँ से ,
तो चौंकाना[5] चपल-रमणी[6] भीम सी गर्जना से ॥ ६१ ॥

हेमाम्भोजप्रसवि सलिलं मानसस्याददानः
कुर्वन्कामं क्षणमुखपटप्रीतिमैरावतस्य ।
धुन्वत्कल्पद्रुमकिसलयान्यं शुकानीव वातै-
र्नानाचेष्टैर्जलदललितैर्निर्विशेस्तं नगेन्द्रम् ॥ ६२ ॥

जो है हेमोत्पल-जनक[7] सो मानसी[8] नीर पीना ;
दिङ्नागेन्द्र-प्रिय[9] मुख-पट[10] प्रेम से मेघ होना ।
औ वायू से सुरतरु-लता वस्त्र सी तू कँपाना ;
नाना क्रीड़ा कर घन ! वहीं शैल पै मोद पाना ॥ ६२ ॥

---

१ जिसमें अहि-कङ्कण नहीं है । २ हाथ में हाथ मिलाकर । ३ पैरों चलने वाली । ४ जलयन्त्र ; फुहारा । ५ डराना (श्रीधर-कोश) । ६ उन चंचला खिलाड़ियों को । ७ कनक-कमल-जनक ; सोने के कमल पैदा करनेवाला । ८ मानसरोवर का । ९ ऐरावत का प्यारा । १० घूँघट

तस्योत्सङ्गे प्रणयिन इव स्रस्तगङ्गादुकूलां
न त्वं दृष्ट्वा न पुनरलकां ज्ञास्यसे कामचारिन् ।
या वः काले वहति सलिलोद्गारमुच्चैर्विमाना
मुक्ताजालग्रथितमलकं कामिनीवाभ्रवृन्दम ॥ ६३ ॥

जानेगा तू निरख अलका शैल पै, कामचारी[1] !
बैठी गंगा-पट[2] तज मनो स्वामि के अंक प्यारी ।
वर्षा-धारा-युत घन-घरे यों लसे तुङ्गहर्म्या[3],
जैसे मुक्ताग्रथित[4] अलकों[4]-युक्त नारी सुरम्या[5] ॥ ६३ ॥*

पूर्व भाग समाप्त ।

१ इच्छानुसार विचरने वाला । २ गङ्गारूप साड़ी । ३ ऊँचे महलोंवाली ।
४ मोतियों से गुँथे बाल । ५ सुन्दर रमणी ।

* बीच के पाँच प्रक्षिप्त श्लोक मिलाकर इस भाग में कुल ६८ श्लोक हुए ।

उत्तर भाग ।

विद्युत्वन्तं ललितवनिताः सेन्द्रचापं सचित्राः
सङ्गीताय प्रहतमुरजाः स्निग्धगम्भीरघोषम् ।
अन्तस्तोयं मणिमयभुवस्तुङ्गमभ्रंलिहाग्राः
प्रासादास्त्वां तुलयितुमलं यत्र तैस्तैर्विशेषैः ॥ १ ॥

तेरे साथी सुरधनु[1] तड़ित्[2], हैं वहाँ चित्र, नारी ;
उन्में गान ध्वनि मुरज[3] की, गर्ज तेरी सुप्यारी ।
वे ऊँचे स्वत्सम[4], मणिमयी भूमि, तू नीरधारी ;
तेरे ही से सदन अलका के लसें, कामचारी ! ॥ १ ॥

हस्ते लीलाकमलमलके बालकुन्दानुविद्धं
नीता लोध्रप्रसवरजसा पाण्डुतामानने श्रीः ।
चूडापाशे नवकुरबकं चारु कर्णे शिरीषं
सीमन्ते च त्वदुपगमजं यत्र नीपं वधूनाम् ॥ २ ॥

हाथों में श्री-कमल[5], अलकों में कली कुन्द की है ;
पाण्डुश्री[6] है वदन पर जो लोध्र-रेणू[6] लगी है ।
वेणी में हैं कुरबक गुँथे, कर्ण में हैं शिरीष ;
स्त्री साजे हैं तहँ तव दिये नीप से मांग-केश* ॥ २ ॥

---

१ इन्द्रधनुष । २ बिजली । ३ मृदङ्ग । ४ तेरे समान । ५ शोभा के कमल या क्रीड़ा-कमल । ६ लोध्र-पुष्प की पराग से पीली कान्ति ।

* इस श्लोक में यक्ष इस बात का संकेत करता है कि अलका में छहों ऋतुओं के फूल सदा फूलते हैं।

यत्रोन्मत्तभ्रमरमुखराः पादपा नित्यपुष्पा
हँसश्रेणीरचितरशना नित्यपद्मा नलिन्यः ।
केकोत्कण्ठा भवनशिखिनो नित्यभास्वत्कलापा
नित्यज्योत्स्नाः प्रतिहततमोवृत्तिरम्याः प्रदोषाः ॥(१)॥

फूले वृक्षों पर अलि जहाँ नित्य गुंजारते हैं ;
हंस-श्रेणी-युत सर सदा कंज भी फूलते हैं ।
नाचें नित्योत्सुक[1] भवन के चारु[2] प्यारे कलापी[3] ;
सायङ्काल प्रतिदिन जहाँ चन्द्रिका है सुहाती ॥ (१) ॥

आनन्दोत्थं नयनसलिलं यत्र नान्यैर्निमित्तै-
र्नान्यस्तापः कुसुमशरजादिष्टसंयोगसाध्यात् ।
नाप्यन्यस्मात्प्रणयकलहाद्विप्रयोगोपपत्ति-
र्वित्तेशानां न च खलु वयो यौवनादन्यदस्ति ॥(२)॥

आनन्दाश्रु तज कर जहाँ अन्य अश्रु नहीं है ;
नाहीं काम-ज्वर तज व्यथा साध्य[3] जो भोग से है ।
कोई मानप्रिय[4] तज नहीं है वियोग-प्रयोग[5] ;
यक्षों को है तरुण वय को छोड़ ना और योग[6] ॥ (२) ॥

यस्यां यक्षाः सितमणिमयान्येत्य हर्म्यस्थलानि
ज्योतिश्छायाकुसुमरचितान्युत्तमस्त्री सहायाः ।
आसेवन्ते मधु रतिफलं कल्पवृक्षप्रसूतं
त्वद्गम्भीरध्वनिषु शनकैः पुष्करेष्वाहतेषु ॥ ३ ॥

हर्म्यों में, जो सितमणिमयी, पुष्प से ऋक्ष[7] बिम्ब—
शोभे हैं, स्वत्कल[8]-सम जहाँ चारु बाजें मृदङ्ग ।

---

१ नित्य उत्सुक । २ सुन्दर पंखोंवाले मोर । ३ आराम होने लायक । ४ चोंचले, प्रणय-कलह । ५ कारण (श्रीधर-कोश), प्रणय-कलह को छोड़ अन्य कोई कारण वियोग का वहाँ नहीं है । ६ मौका या मेल । ७ तारा । ८ तेरी ध्वनि ।

पीते हाला[1] रतिफल[2] जहाँ कल्पवृक्षों[3] रसीली,
यक्षों का है रमण-थल[4] जो, संग नारी छबीली ॥ ३ ॥

मन्दाकिन्याः सलिलशिशिरैः सेव्यमाना मरुद्भि-
र्मन्दाराणामनुतटरुहां छायया वारिताष्णाः।
अन्वेष्टव्यैः कनकसिकतामुष्टिनिक्षेपगूढ़ैः
सङ्क्रीडन्ते मणिभिरमरप्रार्थिता यत्र कन्याः ॥ ४ ॥

सेती हैं जो सुर-सरिमरुत सीर औ नीरधारी[5],
लेती हैं जो सुरतरु-तले छाँह सन्तापहारी।
ऐसी कन्या लख कर जिन्हें देव होते अधीर;
खेलें खोजें कनक-रज[6] में मुष्टि दे गुप्तहीर[7] ॥ ४ ॥

नीवीबन्धोच्छ्वसितशिथिलं यत्र बिम्बाधराणां
क्षौमं रागादनिभृतकरेष्वाक्षिपत्सु प्रियेषु।
अर्चिस्तुङ्गानभिमुखमपि प्राप्य रत्नप्रदीपा-
न्ह्रीमूढानां भवति विफलप्रेरणा चूर्णमुष्टिः ॥ ५ ॥

नीवी-ग्रन्थी शिथिल करके वस्त्र प्रेमी छुटावें;
मुग्धा प्यारी अरुणअधरा[8] काम-क्रीड़ा दिखावें।
भोली लज्जा-विवश तब हो चूर्णमुष्टी[9] चलावें;
पै होती हैं विफल[10], मणि का दीप कैसे बुझावें? ॥ ५ ॥

नेत्रानीताः सततगतिना यद्विमानाग्रभूमी-
रालेख्यानां नवजलकणैर्दोषमुत्पाद्य सद्यः।

---

१ कल्पवृक्ष की "रतिफल" नाम की मदिरा। २ विहार-स्थल। ३ जलकणयुक्त। ४ सोने की बालू। ५ गुप्तहीर नाम का खेल; जिसमें हीरा बालू में कोई छिपाती है और कोई ढूँढ़ती है। ६ अरुण अधरोंवाली। ७ दिया गुल करने के लिए गुलाल की मूठी। ८ नाकामयाब।

शङ्कास्पृष्टा इव जलमुचस्त्वादृशा जालमार्ग-
धूमोद्गारानुकृतिनिपुणा जर्जरा निष्पतन्ति ॥ ६ ॥

तेरे जैसे घन गृह-छतों पै मरुत्-सखा मित्र !
आते हैं औ नव जल-कणों से मिटाते सुचित्र ।
धीरे धीरे बन कर धुआँ चातुरी धारते हैं;
सकोची हो, डर कर वहाँ जाल से भागते हैं ॥ ६ ॥

यत्र स्त्रीणां प्रियतमभुजालिङ्गनोच्छ्वासिताना-
मङ्गग्लानिं सुरतजनितां तन्तुजालावलम्बाः ।
त्वत्संरोधापगमविशदैश्चन्द्रपादैर्निशीथे
व्यालुम्पन्ति स्फुटजललवस्यन्दिनश्चन्द्रकान्ताः ॥ ७ ॥

मेघश्रेणी-बिन नभ-शशी की निशीथ-प्रकान्ति[1]—
पाके, छोड़ें जल-कण मृदु हार के चन्द्रकान्त[2] ।
वे ही उन्की सुरत जनित-ग्लानि के शान्तकारी ,
छूटी हैं जो प्रियतम भुजाऽऽश्लेष[3] से रम्य नारी ॥ ७ ॥

अक्षय्यान्तर्भवननिधयः प्रत्यहं रक्तकण्ठै-
रुद्गायद्भिर्धनपतियशः किन्नरैर्यत्र सार्धम् ।
वैभ्राजाख्यं विबुधवनितावारमुख्यासहाया
बद्धालापा बहिरुपवनं कामिनो निर्विशन्ति ॥ ८ ॥

गाते हैं जो धनद-यश को किन्नर प्रेमराते ;
श्रीमान् साथी रसिक उनके यत्र हैं काममाते ।
ले के प्यारी अमर-गणिका साथ में बोल बातें—
वे वैभ्राजोपवन[4] अलका-बाह्य[5] में नित्य जाते ॥ ८ ॥

१ अर्धरात्रि की चाँदनी । २ एक प्रकार का मणि, जो चंद्र चाँदनी पाकर आर्द्र होता है । ३ प्यारे के आलिङ्गन से । ४ वैभ्राज नाम का उपवन । ५ अलका के बाहर का ।

गत्युत्कम्पादलकपतितैर्यत्र मन्दारपुष्पैः
पत्रच्छेदैः कनककमलैः कर्णविभ्रंशिभिश्च ।
मुक्ताजालैः स्तनपरिसरच्छिन्नसूत्रैश्च हारै-
र्नैशो मार्गः सवितुरुदये सूच्यते कामिनीनाम् ॥ ९ ॥

केशों से हैं पतित[1], चलते मार्ग, मन्दार-फूल ;
डाले हैं औ कनक-कमलों के जहाँ कर्णफूल ।
मुक्ताजाल स्खलित बिखरे हार टूटे हिये के ,
दर्शाते ये, निशि-पथ, सभी, प्रात में कामिनी के ॥ ९ ॥

मत्वा देवं धनपतिसखं यत्र साक्षाद्वसन्तं
प्रायश्चापं न वहति भयान्मन्मथः षट्पदज्यम् ।
सभ्रभङ्गप्रहितनयनैः कामिलक्ष्येष्वमोघै-
स्तस्यारम्भश्चतुरवनिताविभ्रमैरेव सिद्धः ॥ १० ॥

साक्षात मान, धनपति-सखा रुद्र को, वास जाने ;
शङ्का ही से मदन स्वधनू की अलिज्या[2] न ताने ।
सभ्रभङ्गा[3], तदपि, वनिता काम का काम सारें ;
कामी के, वे भ्रुकुटि-धनु से नेत्र के बाण मारे ॥ १० ॥

वासश्चित्रं मधु नयनयोर्विभ्रमादेशदक्षं
पुष्पोद्भेदं सह किसलयैर्भूषणानां विकल्पान् ।
लाक्षारागं चरणकमलन्यासयोग्यं च यस्या-
मेकः सूते सकलमबलामण्डनं कल्पवृक्षः ॥ ११ ॥

देता रङ्गी[4] वसन, मधु, जो नेत्र-लीला सिखाता ,
शृङ्गारों के मृदु कुसुम औ पत्र का है सुदाता ।

---

१ गिरे हुए । २ भौंरों की (काम के धनुष की) प्रत्यंचा । ३ जिनकी भौंहें कुटिल
४ रङ्गीन ।

देता लाली, कमल पद को, लाख है; कल्पवृक्ष—
जन्माता है सकल अबला-साज ये एक दक्ष ॥ ११ ॥

तत्रागारं धनपतिगृहादुत्तरेणास्मदीयं
दूरात्लक्ष्यं सुरपतिधनुश्चारुणा तोरणेन ।
यस्योपान्ते कृतकतनयः कान्तया वर्धितो मे
हस्तप्राप्यस्तवकनमितो बालमन्दारवृक्षः ॥ १२ ॥

मेरा वासस्थल धनद के सौध से उत्तरी है,
दूरी से ही सुरधनुष[1] सी तोरण-श्री[2]-दिखे है ।
मेरी कान्ता सुत-सम वहाँ बाल मन्दार-वृक्ष—
पाले है ; जो अति नत; मिलें हस्त से पुष्पगुच्छ ॥ १२ ॥

वापी चास्मिन्मरकतशिलाबद्धसोपानमार्गा
हैमैश्छन्ना विकचकमलैः स्निग्धवैदूर्यनालैः ।
यस्यास्तोये कृतवसतयो मानसं संनिकृष्टं
नाध्यास्यन्ति व्यपगतशुचस्त्वामपि प्रेक्ष्य हंसाः ॥ १३ ॥

वापी में है मरकत-शिला-बद्ध[3] सोपान-माल[3] ;
सोने के हैं कमल विकस; चारु पन्ना-मृनाल ।
वर्षा में भी बस कर जहाँ हंस हैं नीर पीते,
नेरे[4] हैं जो ; तदपि न कभी मानस-ध्यान[4] लाते ॥ १३ ॥

तस्यास्तीरे रचितशिखरः पेशलैरिन्द्रनीलैः
क्रीडाशैलः कनककदलीवेष्टनप्रेक्षणीयः ।

१ इन्द्रधनुष । २ तोरण की शोभा; तोरण = बहिर्द्वार । ३ मरकत मणि की शिलाओं से बँधी हुई सीढ़ियों की पंक्ति । ४ मानसरोवर वहाँ से पास ही है; पर हंस उसकी याद नहीं करते ।

मद्गोहिन्याः प्रिय इति सखे चेतसा कातरेण
प्रेक्ष्योपान्तस्फुरिततडितं त्वां तमेव स्मरामि ॥ १४ ॥

है मत्क्रीड़ा-गिरिवर वहीं, शृङ्ग में इन्द्रनील—
शोभा देते; कनक—कदली से घिरा चारु शैल।
तेरी नीली चमक, चपला-संग में, देख[1] सेव!
मत्कान्ता के प्रिय अचल की याद आती सवेद ॥ १४ ॥

रक्ताशोकश्चलकिसलयः केसरश्चात्र कान्तः
प्रत्यासन्नौ कुरवकवृतेर्माधवीमण्डपस्य।
एकः सख्यास्तव सह मया वामपादाभिलाषी
काङ्क्षत्यन्यो वदनमदिरां दोहदच्छद्मनाऽस्याः ॥ १५ ॥

शोभा देता कुरबक-घिरा माधवी-कुञ्ज एक;
जिसके पास प्रिय बकुल औ लाल डोले अशोक।
दोनों तेरी उस प्रिय सखी से रखें व्याज[2] काम।
चाहे मेरे सम मुख-मधु[3] औ मृदु पाद वाम ॥ १५ ॥

तन्मध्ये च स्फटिकफलका काञ्चनी वासयष्टि-
र्मूले बद्धा मणिभिरनतिप्रौढवंशप्रकाशैः।
तालैः शिञ्जद्वलयसुभगैर्नर्तितः कान्तया मे
यामध्यास्ते दिवसविगमे नीलकण्ठः सुहृद्वः ॥ १६ ॥

उनके बीच स्फटिक-फलका[4] हेम के दण्ड पै है,
नीचे जो है मणियुत, हरे वंश की सी प्रभा है।

१ जैसे चपला के साथ में तेरी नीली चमक है वैसे ही स्वर्गकदलियों के साथ उस नीलम से जड़े हुए पर्वत की चमक है। २ दोहद का मिस रख कर; कहते हैं, सौभाग्यवती स्त्री के वामपाद-स्पर्श से अशोक और मुख-मधु के गण्डूष (कुल्ला) से बकुल फूलते हैं। ३ मदिरा। ४ चौकी।

देता लाली, कमल पद को, लाख है; कल्पवृक्ष—
जन्माता है सकल अबला-साज ये एक दक्ष ॥ ११ ॥

तत्रागारं धनपतिगृहादुत्तरेणास्मदीयं
दूरालक्ष्यं सुरपतिधनुश्चारुणा तोरणेन ।
यस्योपान्ते कृतकतनयः कान्तया वर्धितो मे
हस्तप्राप्यस्तवकनमितो बालमन्दारवृक्षः ॥ १२ ॥

मेरा वासस्थल धनद के सौध से उत्तरी है,
दूरी से ही सुरधनुष[1] सी तोरण-श्री[2]-दिखे है ।
मेरी कान्ता सुत-सम वहां बाल मन्दार-वृक्ष—
पाले है ; जो अति नत; मिलें हस्त से पुष्पगुच्छ ॥ १२ ॥

वापी चास्मिन्मरकतशिलाबद्धसोपानमार्गा
हैमैश्छन्ना विकचकमलैः स्निग्धवैदूर्यनालैः ।
यस्यास्तोये कृतवसतयो मानसं संनिकृष्टं
नाध्यास्यन्ति व्यपगतशुचस्त्वामपि प्रेक्ष्य हंसाः ॥ १३ ॥

वापी में है मरकत-शिला-बद्ध[3] सोपान-माल[4] ;
सोने के हैं कमल विकसे; चारु पन्ना-मृनाल ।
वर्षा में भी बस कर जहाँ हंस हैं नीर पीते,
नेरे[5] हैं जो ; तदपि न कभी मानस-ध्यान[6] लाते ॥ १३ ॥

तस्यास्तीरे रचितशिखरः पेशलैरिन्द्रनीलैः
क्रीडाशैलः कनककदलीवेष्टनप्रेक्षणीयः ।

१ इन्द्रधनुष । २ तोरण की शोभा; तोरण = बहिर्द्वार । ३ मरकत मणि की शिलाओं से बँधी हुई सीढ़ियों की पंक्ति । ४ मानसरोवर वहाँ से पास ही है; पर हंस उसकी याद नहीं करते ।

मद्गोहिन्याः प्रिय इति सखे चेतसा कातरेण
प्रेक्ष्योपान्तस्फुरिततडितं त्वां तमेव स्मरामि ॥ १४ ॥

हे मत्क्रीड़ा-गिरिवर वहीं, शृङ्ग में इन्द्रनील—
शोभा देते; कनक—कदली से घिरा चारु शैल !
तेरी नीली चमक, चपला-संग में, देख[1] मेघ !
मत्कान्ता के प्रिय अचल की याद आती सखेद ॥ १४ ॥

रक्ताशोकश्चलकिसलयः केसरश्चात्र कान्तः
प्रत्यासन्नौ कुरबकवृतेर्माधवीमण्डपस्य ।
एकः सख्यास्तव सह मया वामपादाभिलाषी
काङ्क्षत्यन्यो वदनमदिरां दोहदच्छद्मनाऽस्याः ॥ १५ ॥

शोभा देता कुरबक-घिरा माधवी-कुञ्ज एक;
जिसके पास प्रिय बकुल औ लाल डोले अशोक ।
दोनों तेरी उस प्रिय सखी से रखें व्याज[2] काम ।
चाहे मेरे सम मुख-मधु[3] औ मृदु पाद वाम ॥ १५ ॥

तन्मध्ये च स्फटिकफलका काञ्चनी वासयष्टि-
र्मूले बद्धा मणिभिरनतिप्रौढवंशप्रकाशैः ।
तालैः शिञ्जद्वलयसुभगैर्नर्तितः कान्तया मे
यामध्यास्ते दिवसविगमे नीलकण्ठः सुहृद्वः ॥ १६ ॥

उनके बीच स्फटिक-फलका[4] हेम के दण्ड पै है,
नीचे जो है मणियुत, हरे वंश की सी प्रभा है ।

१ जैसे चपला के साथ में तेरी नीली चमक है वैसे ही स्वर्णकदलियों के साथ उस नीलम से जड़े हुए पर्वत की चमक है । २ दोहद का मिस रख कर; कहते हैं, सौभाग्यवती स्त्री के वामपाद-स्पर्श से अशोक और मुख-मधु के गण्डूष (कुल्ला) से बकुल फूलते हैं । ३ मदिरा । ४ चौकी ।

आलोके ते निपततिपुरा सा बलिव्याकुला वा
मत्सादृश्यं विरहतनु वा भावगम्यं लिखन्ती ।
पृच्छन्तो वा मधुरवचनां सारिकां पञ्जरस्थां
कच्चिद्भर्तुः स्मरसि रसिके त्वं हि तस्य प्रियेति ॥ २२ ॥

देखेगा तू विकल उसको पूजती देव पितृ,
भावों[1] से मत्[2] विरह-तनु[3] का या बनाती सुचित्र ।
किंवा बन्दी[4] मधुर-बयनी सारिका से बताती;
"स्वामी की तू प्रिय सुरसिके[5] क्या कभी याद आती ?"[6] ॥ २२ ॥

उत्सङ्गे वा मलिनवसने सौम्य निक्षिप्य वीणां
मद्गोत्राङ्कं विरचितपदं गेयमुद्गातुकामा ।
तन्त्रीमार्द्रां नयनसलिलैः सारयित्वा कथञ्चिद्
भूयो भूयः स्वयमपि कृतां मूर्च्छनां विस्मरन्ती ॥ २३ ॥

या देखेगा मलिनवसना[4] अंक में धार वीना—
गाने बैठी मम कुल पद प्रेम में हो प्रवीना ।
तन्त्री[5] होती नयन-जल से आर्द्र[6] तो पोंछती है,
बारम्बार, स्वकृत[7], घन रे ! मूर्च्छना[8] भूलती है ॥ २३ ॥

शेषान्मासान्विरहदिवसस्थापितस्यावधेर्वा
विन्यस्यन्ती भुवि गणनया देहलीदत्तपुष्पैः ।
मत्सङ्गं वा हृदयनिहितारम्भमास्वादयन्ती
प्रायेणैते रमणविरहेष्वङ्गनानां विनोदाः ॥ २४ ॥

किंवा बाकी दिन विरह के लेखने के लिए जो
फूलों को भू पर गिन रखे; देहली पै धरे जो ।

१ भाव-मन की तरङ्ग (श्रीधरकोश) । २ विरह से कृश मेरे शरीर का । ३ पिंजरे में बन्द । ४ मलिन वसनवाली । ५ वीणा के तार । ६ अपनी ही उठाई हुई । ७ गाने में स्वर में चढ़ाव उतार के कौशल को मूर्च्छना कहते हैं ।

किंवा माने मम मिलन की कल्पना का प्रमोद :

प्रायः ये हीं प्रिय-विरहिणी नारियों के विनोद ॥ २४ ॥

सव्यापारामहनि न तथा पीडयेन्मद्वियोगः

शङ्के रात्रौ गुरुतरशुचं निर्विनोदां सखीं ते।

मत्सन्देशैः सुखयितुमलं पश्य साध्वीं निशीथे

तामुन्निद्रामवनिशयनां सौधवातायनस्थः ॥ २५ ॥

कामों से है न विरह-व्यथा द्योस[1] में भामिनी को,

देती होगी पर दुख महा यामिनी कामिनी[2] को।

देखेगा तू क्षिति पर, बिना नींद, साध्वी विचारी,

मद्वार्ता[3] दे सुखित करना रात में बैठ बारी[4] ॥ २५ ॥

आधिक्षामां विरहशयने संनिषण्णैकपार्श्वां

प्राचीमूले तनुमिव कलामात्रशेषां हिमांशोः।

नीता रात्रिः क्षण इव मया सार्धमिच्छारतैर्या

तामेवोष्णैर्विरहमहतीमश्रुभिर्यापयन्तीम् ॥ २६ ॥

लेटी शय्या पर विरह की एकपार्श्वा[5] कृशा है,

मानो प्राची-क्षितिज-शशि की एक बाकी कला[6] है।

जो रात्रें थीं क्षण सम कटीं केलि में साथ मेरे,

काटे है वे सविरह, गिरें तप्त आंसू घनेरे ॥ २६ ॥

पादानिन्दोरमृतशिशिराञ्जालमार्गप्रविष्टान्

पूर्वप्रीत्या गतमभिमुखं संनिवृत्तं तथैव।

चक्षुः खेदात्सलिलगुरुभिः पक्ष्मभिश्छादयन्तीं

साभ्रेऽह्नीव स्थलकमलिनीं न प्रबुद्धां न सुप्ताम् ॥ २७ ॥

---

१ दिन। २ काम से बेचैन। ३ मेरा सन्देशा। ४ खिड़की (आंधरकोश) ५ एक करवट से। ६ मानों पूर्व-क्षितिज में कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी का चन्द्र है।

जाल-द्वारा विधु-कर[1] सुधापूर्ण आते विलोक—
जानें पूर्व-प्रिय दृग त्वरित् किन्तु लौटें सशोक ।
खेदाश्रु से गुरु[2] वरुनियों से मुँदे नेत्र हैं यों,
साभ्राह्नों[3] में स्थलकमलिनी फुल्ल ना सुप्त ना ज्यों ॥ २७ ॥

निःश्वासेनाधरकिसलयक्लेशिना विक्षिपन्तीं
शुद्धस्नानात्परुषमलकं नूनमागण्डलम्बम् ।
मत्संयोगः कथमुपनयेत्स्वप्नजोऽपीति निद्रा-
माकाङ्क्षन्तीं नयनसलिलोत्पीडरुद्धावकाशाम् ॥ २८ ॥

निःश्वासें[5], जो मधुर अधरों को महा क्लेश देतीं,
शुद्धस्नान-प्रजड़[6] अलकें गण्ड[7] से हैं हटातीं ।
कैसे हो हो, शयन करके स्वप्न में संग मेरा—
चाहे प्यारी, पर नयन को अश्रुओं ने सु[8]-घेरा ॥ २८ ॥

आद्ये बद्धा विरहदिवसे या शिखा दाम हित्वा
शापस्यान्ते विगलितशुचा तां मयोद्वेष्टनीयाम् ।
स्पर्शक्लिष्टामयमितनखेनासकृत्सारयन्तीं
गण्डाभोगात्कठिनविषमामेकवेणीं करेण ॥ २९ ॥

बाँधी थी जो विरह-दिन में, माल को छोड़, वेणी,
खोलूँगा जो मुदित मन से शाप से बाद में ही ।
आते उसके विषम कच हैं गण्ड पै दुःखकारी ;
देखेगा तू , नखयुत करों से सँभाले विचारी ॥ २९ ॥

सा संन्यस्ताभरणमबला पेशलं धारयन्ती
शय्योत्सङ्गे निहितमसकृद्दुःखदुःखेन गात्रम् ।

१ चन्द्रकिरण । २ आँसुओं से भारी । ३ बदली के दिनों में । ४ न खिली है न सकुची ।५ तप्त और लम्बी साँसें । ६ शुद्धस्नान के कारण रूक्ष । ७ कपोल । ८ बहुत ।

त्वामप्यस्रं नवजलमयं मोचयिष्यत्यवश्यं
प्रायः सर्वो भवति करुणावृत्तिरार्द्रान्तरात्मा ॥ ३० ॥

त्यागे हैं हे जलद ! अबला ने अलङ्कार सारे,
दुःखी शय्या पर मृदु तनू कष्ट से मित्र ! धारे ।
छोड़ेगा तू नवजलमयी वेगही अश्रुधार;
प्रायः सारे सरसहृदयी हैं दया के अगार[1] ॥ ३० ॥

जाने सख्यास्तव मयि मनः संभृतस्नेहमस्मा-
दित्थंभूतां प्रथमविरहे तामहं तर्कयामि ।
वाचालं मां न खलु सुभगम्मन्यभावः करोति
प्रत्यक्षं ते निखिलमचिराद् भ्रातरुक्तं मया यत् ॥ ३१ ॥

है जो मेरे पर, तव सखी प्रीति, मैं जानता हूँ ;
एवं उसका प्रथमविरही हाल में तर्कता हूँ ।
ऐसा मानो मत—सुभग[2] हूँ—व्यर्थ गाता बड़ाई—
जल्दी ही तू यह सब दशा देख ले जा न भाई ! ॥ ३१ ॥

रुद्धापाङ्गप्रसरमलकैरञ्जनस्नेहशून्यं
प्रत्यादेशादपि च मधुनो विस्मृतभ्रूविलासम् ।
त्वय्यासन्ने नयनमुपरिस्पन्दि शङ्के मृगाक्ष्याः
मीनक्षोभाच्चलकुवलयश्रीतुलामेष्यतीति ॥ ३२ ॥

दीखें श्यामांजन बिन दृगों में घिरे रुक्ष केश,
भूली भी है, तज कर सुरा-पान, सुभ्रूविलास ।

---

१ प्रायः सारे सरस दिखते हैं दया के अगार । २ प्यारा पति; ऐसा मत मान कि मैं उसका प्यारा पति होने के कारण उसकी व्यर्थ बड़ाई गाता हूँ ।

वामा चक्षु, तव गमन से, कामिनी का फुरेगा,
शोभा में जो झष-कृत चलत कंज[1]-सा ही लसेगा ॥ ३२ ॥

वामश्चास्याः करुहपदैर्मुच्यमानो मदीयै-
र्मुक्ताजालं चिरपरिचितं त्याजितो दैवगत्या ।
संभोगान्ते मम समुचितो हस्तसंवाहनानां
यास्यत्यूरुः सरसकदलीस्तम्भगौरश्चलत्वम् ॥ ३३ ॥

देवेच्छा से मम नख-व्रणों[2] के बिना जानु[3] वाम -
दीखे त्यागी सतत[4]-मुक्ता-तागड़ी भी ललाम ।
जिसकी सेवा उचित रति के अन्त में मत्करों[5] से ;
होगा उसका स्फुरण, कदली-स्तम्भ सी गौर दीसे ॥ ३३ ॥

तस्मिन्काले जलद यदि सा लब्धनिद्रासुखा स्या-
दन्वास्यैनां स्तनितविमुखो याममात्रं सहस्व ।
मा भूदस्याः प्रणयिनि मयि स्वप्नलब्धे कथञ्चित्
सद्यःकण्ठच्युतभुजलताग्रन्थि गाढोपगूढम् ॥ ३४ ॥

देखे जो तू सुख शयन में मेघ ! तो एक याम—
सोने देना, ध्वनि न करना, स्वस्थ लेना आराम ।
लेती होगी मम मिलन का स्वप्न-आनन्द प्यारी ;
छूटे ना तत्[6] सुठि भुजलता ग्रीव में जो हमारी ॥ ३४ ॥

तामुत्थाप्य स्वजलकणिकाशीतलेनानिलेन
प्रत्याश्वस्तां सममभिनवैर्जालकैर्मालतीनाम् ।
विद्युद्गर्भः स्तिमितनयनां त्वत्सनाथे गवाक्षे
वक्तुं धीरः स्तनितवचनैर्मानिनीं प्रक्रमेथाः ॥ ३५ ॥

---

१ मछली-द्वारा हिलाया हुआ कमल । २ नखों के सूखे व्रणचिह्न । ३ जंघा । ४ सदा की । ५ मेरे हाथों । ६ उसकी स्वप्न में उसकी भुजलता मेरी ग्रीवा में होगी सो तेरी ध्वनि से कहीं छूट न जाय ।

पश्चात शीत स्वजल-कण की वायु से ही जगाना;
प्यारी का भी सुमन[1] सुमना[2]-साथ ही तू खिलाना।
देखे सो ज्यों चकित खिड़की में तुझे विज्जु-साथ,
त्योंही तू यों घन! सु-रव से बोलना धीर बातः—॥ ३५ ॥

भर्तुर्मित्रं प्रियमविधवे विद्धि मामम्बुवाहं
तत्सन्देशैर्हृदयनिहितैरागतं त्वत्समीपम्।
यो वृन्दानि त्वरयति पथि श्राम्यतां प्रोषितानां
मन्द्रस्निग्धैर्ध्वनिभिरबलावेणिमोक्षोत्सुकानी॥ ३६ ॥

"त्वत् भर्ता का प्रिय, जलद मैं, जान सौभाग्यवाली!
सन्देशा ले तव निकट मैं आ गया आज आली!
मेरी मन्द ध्वनि सुन, पथी श्रान्त[3], आनन्द लेने—
जाते प्रेमोत्सुक स्वतिय की खोलने चारु वेणी"॥३६॥

इत्याख्याते पवनतनयं मैथिलीवोन्मुखी सा
त्वामुत्कण्ठोच्छ्वसितहृदया वीक्ष्य सम्भाव्य चैवम्।
श्रोष्यत्यस्मात्परमवहिता सौम्य सीमन्तिनीनां
कान्तोदन्तः सुहृदुपनतः सङ्गमात्किञ्चिदूनः॥ ३७ ॥

ज्यों सीता ने पवन-सुत को त्यों तुझे सो लखेगी[4];
सन्मानेगी, मुदित चित से, बैन आगे सुनेगी।
कान्ता पाती जब कुशल है कान्त की मित्र-द्वारा,
होती है तो वह सुखित ज्यों संग में प्राणप्यारा॥ ३७ ॥

---

१ सुन्दर मन। २ सुमना मालति जातिः सप्तला नवमालिका (अमर)। ३ थके पथिक। ४ जिस प्रकार सीता जी ने अशोक वृक्ष पर बैठे हुए हनुमान जी को, शिर उठा कर आदरपूर्वक देखा था उसी प्रकार तुझे वह देखेगी।

तामायुष्मन्मम च वचनादात्मनश्चोपकर्त्तुं
ब्रूयादेवं तव सहचरो रामगिर्याश्रमस्थः ।
अव्यापन्नः कुशलमबले पृच्छति त्वां वियुक्तः
पूर्वाभाष्यं सुलभविपदां प्राणिनामेतदेव ॥ ३८ ॥

माने मेरे वचन धन ! या जीव-रक्षा-व्रतस्थ[1]—
है तू१; सो यों कह 'तव पती रामगिर्याश्रमस्थ—
जीता है औ कुशल तव सो पूछता है वियुक्त[2]' ;
बोले येही वचन पहले जो महा शोकयुक्त ॥ ३८ ॥

अङ्गेनाङ्गं प्रतनु तनुना गाढतप्तेन तप्तं
सास्रेणाश्रुद्रुतमविरतोत्कण्ठमुत्कण्ठितेन ।
उष्णोच्छ्वासं समधिकतरोच्छ्वासिना दूरवर्ती
सङ्कल्पैस्तैर्विशति विधिना वैरिणा रुद्धमार्गः ॥ ३९ ॥

'तेरा सा हो कृश वह तपे, दीर्घ निःश्वास आती ;
छोड़े तेरे सम नयन से अश्रु की धार तातीं;
उत्कंठा भी तव सम, मिले साम्य-संकल्प द्वारा[3];
है बेचारा विधि-वश दुखी, है रुका मार्ग सारा' ॥ ३९ ॥

शब्दाख्येयं यदपि किल ते यः सखीनां पुरस्ता-
त्कर्णेलोलः कथयितुमभूदाननस्पर्शलोभात् ।
सोऽतिक्रान्तः श्रवणविषयं लोचनाभ्यामदृश्य-
स्त्वामुत्कण्ठाविरचितपदंमन्मुखेनेदमाह ॥ ४० ॥

'थीं जो बातें प्रकट कहने योग्य आगे सखी के,
वे भी छूने-हित वदन[4] के बोलता था श्रुती में !

---

१ मेरे वचन मान कर या तू जीवों की रक्षा करनेवाला है—इस नाते से। २ विरही। ३ जैसी तेरी दशा है वैसीही उसकी है; इस तरह वह तेरी समता करके मानों तुझ से मिल रहा है। ४ तेरे कपोल चूमने का लोभी।

नाहीं-नेत्र-श्रुति-गति जहाँ कान्त तेरा वहाँ है;
सोत्कंठा[1] ये सु-पद मुझसे सो कहाता यहाँ है':—॥ ४० ॥

श्यामास्वङ्गं चकितहरिणीप्रेक्षणे दृष्टिपातं
वक्त्रच्छायां शशिनि शिखिनां बर्हभारेषु केशान्।
उत्पश्यामि प्रतनुषु नदीवीचिषु भ्रूविलासा-
न्हन्तैकस्मिन्क्वचिदपि न ते चंडि सादृश्यमस्ति ॥४१॥

"श्यामा[2] में है मृदु तन, मृगी में दृगों का सुभास;
शुभ्रांशू[3] में मुखदुति, शिखी-पङ्ख में केश-पाश—
पाता हूँ मैं चपल सरिता-ऊर्मि में भ्रू-विलास;
तेरी शोभा-सम पर कहीं है नहीं चारु भास[4]" ॥ ४१ ॥

त्वामालिख्य प्रणयकुपितां धातुरागैः शिलाया-
मात्मानं ते चरणपतितं यावदिच्छामि कर्तुम्।
अस्रैस्तावन्मुहुरुपचितैर्दृष्टिरालुप्यते मे
क्रूरस्तस्मिन्नपि न सहते संगमं नौ कृतान्तः ॥ ४२ ॥

"गेरू से ही तुझ कुपित[5] को मैं बना के शिला में—
ज्योंही पैरों पड़ कर तुझे चाहता हूँ मनाने;
त्योंही अश्रू बह कर रुके दृष्टि सारी हमारी।
बैरी धाता मिलन सहता चित्र में भी न प्यारी"! ॥ ४२ ॥

धारासिक्तस्थलसुरभिणस्त्वन्मुखस्यास्य बाले
दूरीभूतं प्रतनुमपि मां पञ्चबाणः क्षिणोति।
घर्मान्तेऽस्मिन् विगणय कथं वासराणि व्रजेयु-
र्दिक्संसक्तप्रविततघनव्यस्तसूर्यातपानि ॥ (३) ॥

---

१ उत्कंठासहित। २ प्रियंगुलता। ३ चन्द्र। ४ तरङ्ग। ५ अथवा "तेरी शोभा पर न दिखती एक भी ठौर खास"। ६ प्रणय से कुपित।

"बाले! तेरे सुरभि[1] मुख से दूर हूँ मैं महान;
तौ भी पीड़ा अति कर रहा देह में पंचबान[2]।
वर्षा आई; जलद उमड़े; भानु-गर्मी सिधाई;
कैसे प्यारी दिन विरह के ये कटें दुःखदाई!" ॥ ३ ॥

मामाकाशप्रणिहितभुजं निर्दयाश्लेषहेतो-
र्लब्धायास्ते कथमपि मया स्वप्नसन्दर्शनेषु।
पश्यन्तीनां न खलु बहुशो न स्थलीदेवतानां
मुक्तास्थूलास्तरुकिसलयेष्वश्रुलेशाः पतन्ति ॥ ४३ ॥

"दैवेच्छा से, लख कर तुझे स्वप्न में भेटने को—
फैलाता हूँ भुज गगन में, शोक के मेटने को!
देखें मेरी यह दुख-दशा वन्य देवी सुखेन्दु[3]
डालें मुक्ता सम, किशलयों[4] पै, बड़े अश्रु बिन्दु" ॥ ४३ ॥

भित्त्वा सद्यः किसलयपुटान्देवदारुद्रुमाणां
ये तत्क्षीरस्रुतिसुरभयो दक्षिणेन प्रवृत्ताः।
आलिङ्गयन्ते गुणवति मया ते तुषाराद्रिवाताः
पूर्वं स्पृष्टं यदि किल भवेदङ्गमेभिस्तवेति ॥ ४४ ॥

"आती है जो सरल[5] तरु के भेदती पल्लवों में;
होती है तत्पय-सुरभिता[6] उत्तरी[7] वायु सो मैं—
लेता हूँ री! भर कर उसे अंक में, जान मेरी[8]—
आई होगी हिम-अचल से देह में भेंट तेरी" ॥ ४४ ॥

संक्षिप्येत क्षण इव कथं दीर्घयामा त्रियामा
सर्वावस्थास्वहरपि कथं मन्दमन्दातपं स्यात्।

---

१ सुवासित (आधारकोश)। २ काम। ३ चंद्रमुखी वनदेवी। ४ नवीन कोमल पत्तों पर। ५ देवदारु। ६ उसके दूध से सुगन्धित। ७ मेरी समझ में।
*उत्तर की ओर से दक्षिण की ओर आनेवाली।

इत्थं चेतश्चटुलनयने दुर्लभप्रार्थनं मे
गाढ़ोष्माभिः कृतमशरणं त्वद्वियोगव्यथाभिः ॥ ४५ ॥

"कैसे होवे क्षण-सम निशा दीर्घ जो दुःखकारी ?
कैसे होवे कम दिवस का आज सन्ताप भारी ?
ऐसी चिन्ता चित कर रहा, दुर्लभप्रार्थना से—
दुःखी हो के अशरण हुआ त्वद्वियोग-व्यथा[1] से" ॥ ४५ ॥

नन्वात्मानं बहु विगणयन्नात्मनैवावलम्बे
तत्कल्याणि त्वमपि नितरां मा गमः कातरत्वम् ।
कस्यात्यन्तं सुखमुपनतं दुःखमेकान्ततो वा
नीचैर्गच्छत्युपरि च दशा चक्रनेमिक्रमेण ॥ ४६ ॥

"मैं जीता हूं तव मिलन की आश से प्राणप्यारी !
तू भी धैर्यच्युत न सुभगे ! आज होना दुखारी ।
कोई पावे न अति सुख ही नित्य ना दुःख भारी;
ऊँची नीची गति मनुज की है सदा चक्रचारी[2]" ॥ ४६ ॥

शापान्तो मे भुजगशयनादुत्थिते शार्ङ्गपाणौ
शेषान्मासान्गमय चतुरो लोचने मीलयित्वा ।
पश्चादावां विरहगुणितं तं तमात्माभिलाषं
निर्वेक्ष्यावः परिणतशरच्चन्द्रिकासु क्षपासु ॥ ४७ ॥

"होगा शापान्त जब जगेंगे हरी सेजशेष[3] ;
जाने दे तू नयन मूँद के मास ये चार शेष ।
आवेंगी ज्यों प्रिय शरद की चाँदनी की निशायें ;
पूरेंगी त्यों सब विरह में की हुई कामनायें" ॥ ४७ ॥

१ तेरे वियोग की पीड़ा । २ चक्र के समान चलने वाली । ३ शेषशय्या पर ।

भूयश्चाहं त्वमपि शयने कण्ठलग्ना पुरा मे
निद्रां गत्वा किमपि रुदती सस्वनं विप्रबुद्धा ।
सान्तर्हासं कथितमसकृत्पृच्छतश्च त्वया मे
दृष्टः स्वप्ने कितव रमयन्कामपि त्वं प्रयेति ॥ ४८ ॥

"बोला है सो यह वचन भी कंठ में लग्न[1] सोती—
जागी थी तू तिय ! दिन किसी दुःख से चौंक रोती ।
मैंने पूछा फिर फिर तभी बोल यों तू हँसी थी:—
देखा मैंने रत सवति से स्वप्न में हे छली जी[2] !" ॥ ४८ ॥

एतस्मान्मां कुशलिनमभिज्ञानदानाद्विदित्वा
मा कौलीनाच्चकितनयने मय्यविश्वासिनी भूः ।
स्नेहानाहुः किमपि विरहे ध्वंसिनस्ते त्वभोगा-
दिष्टे वस्तुन्युपचितरसाः प्रेमराशीभवन्ति ॥ ४९ ॥

"ऐसे चिह्नों कुशल मम तू सुन्दरी ! सत्य जान;
विश्वासी हो इस वचन में, लोकचर्चा[3] न मान ।
ऐसा माने मत "विरह में स्नेह भी हीन[4] होता";
इच्छा-वस्तु प्रिय न मिलते किन्तु सो पीन[5] होता" ॥ ४९ ॥

आश्वास्यैवं प्रथमविरहोद्ग्रशोकां सखीं ते
शैलादाशु त्रिनयनवृषोत्खातकूटाच्चिवृत्तः ।
साभिज्ञानप्रहितकुशलैस्तद्वचोभिर्ममापि
प्रातः कुन्दप्रसवशिथिलं जीवितं धारयेथाः ॥ ५० ॥

---

१ गले में लगी हुई । २ इस पद्य में यक्ष अपनी स्त्री के लिए एक पते की बात बतलाता है जिससे उसे इस बात का विश्वास हो जाय कि यक्ष की कुशल का सच्चा सन्देशा मेघ लाया है । इसी बात का आगे के पद्य में उल्लेख है । ३ यदि कोई कहता हो कि यक्ष नहीं रहा । ४ कम । ५ पुष्ट (श्रीधरकोश) ।

प्यारी को है प्रथम विरह-क्लेश सा धैर्य देना,
नन्दी-द्वारा खनितशिखरी[1] शैल से लौट आना।
आना प्यारी-कुशल-वच औ चिन्ह भी ला बताना;
बासी[2] कुन्द-प्रसव[3] सम ये प्राण सूखे बचाना ॥ ५० ॥

कच्चित्सौम्य व्यवसितमिदं बन्धुकृत्यं त्वया मे
प्रत्यादेशान्न खलु भवतो धीरतां कल्पयामि।
निःशब्दोऽपि प्रदिशसि जलं याचितश्चातकेभ्यः
प्रत्युक्तं हि प्रणयिषु सतामीप्सितार्थक्रियैव ॥ ५१ ॥

तू ने अंगीकृत यह किया बन्धु का कार्य क्या रे ?*
जो तू अस्वी[4] कर, तब नहीं तो रहे धैर्य प्यारे !*
तू बोले हां बिना जलद[5] है मांगते चातकों को,
सल्लोक[6] स्वी-वचन[7], करना तृप्त, याचकों को ॥ ५१ ॥

एतत्कृत्वा प्रियमनुचितप्रार्थनावर्त्तिनो मे
सौहार्दाद्वा विधुर इति वा मय्यनुक्रोशबुद्ध्या।
इष्टान्देशाञ्जलद विचर प्रावृषा संभृतश्री-
र्मा भूदेवं क्षणमपि च ते विद्युता विप्रयोगः ॥ ५२ ॥

मैत्री से, या करुण बन, या जान दुःखी वियोगी—
बातें ले जा, यदपि विनती योग्य मेरी न होगी।

---

[1] खोदे गये हैं शिखर जिसके। [2] रात के रक्खे हुए। [3] फूल। [4] अस्वीकृत। [5] जल देता है। [6] सत्+लोक = उत्तम पुरुष। [7] स्वीकारवचन; याचकों को तृप्त करना ही उत्तम पुरुषों का स्वीकार वचन है।

* अथवा "क्यों तू ने स्वी-कृत यह किया बन्धु का कार्य प्यारे ?
दे दे प्रत्युत्तर यदि मुझे तो रहे धैर्य क्या रे !"

वर्षा-श्री-मान्[1] फिर विचर न इष्ट देशों पयोद !
एवं हो न क्षण ऽपि[2] तुझ से दामिनी का वियोग ॥ ५२ ॥

* * *

तं सन्देशं जलधरवरो दिव्यवाचा ऽऽचचक्षे
प्राणांस्तस्या जनहितरतो रक्षितुं यक्षवध्वाः ।
प्राप्योदन्तं प्रमुदितमनाः सा ऽपि तस्थौ स्वभर्तुः
केषां न स्यादभिमतफला प्रार्थना ह्युत्तमेषु ॥ (४) ॥

मित्र-प्रेमी जलद वर ने, व्योम-वाणी सुना के—
सन्देशा दे सकल उसने यक्षिणी-प्राण राखे ।
यक्षस्त्री भी कुशल पति की पा हुई हर्ष-पूर्ण,
पुण्यश्लोक[3]-प्रति न किसकी प्रार्थना हो सुपूर्ण ? ॥ (४) ॥

श्रुत्वा वार्तां जलदकथितां तां धनेशो ऽपि सद्यः
शापस्यान्तं सदयहृदयस्संविधायास्तकोपः ।
संयोज्यैतौ विगलितशुचौ दम्पती हृष्टचित्तौ
भोगानिष्टानविरतसुखं भोजयामास शश्वत् ॥ (५) ॥

सारी वार्ता सुन घन-कही शीघ्रही यक्ष-शाप—
मेटा दाया-युत धनद ने त्याग के सर्व दाप[4] ।
दुःखी जायापति[5], कर सुखी चित्त, दोनों मिलाये,
चाहे जो वे[6] सुखकर सदा साज सारे दिलाये ॥ (५)* ॥

उत्तर भाग समाप्त ।

---

१ वर्षा की शोभा से युक्त । २ क्षण भर भी । ३ उत्तम पुरुष । ४ कोप (मक्षक्षकोश) । ५ दम्पति । ६ मनमाने ।

* ये पांच प्रक्षिप्त श्लोक मिलाकर इस खंड में कुल ५७ श्लोक हुए । सम्पूर्ण ग्रन्थ में ११५ मूल और १० प्रक्षिप्त मिलाकर कुल १२५ श्लोक हुए ।